सबला

वर्ष 4 : अंक 3 सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली अगस्त-सितंबर, 1991

तोड़ दिए धागे सब मैंने

नचाते कठपुतली बना कर जो

इस अंक में

हमारी बात	1
आखिर कब तक —सुहास कुमार	3
समय आ गया है —वीणा शिवपुरी	5
दिन भर डरकर जीती हूं —जुही जैन	7
आड़े समय का साथी—स्त्रीधन	9
नई दिशा में उठते कदम —सुहास कुमार	11
सबला के लेखों पर चर्चा —मंजू दत्ता	14
मुहब्बत की हर वक्त मुरली बजाओ —नजीब फ़ातिमा	15
क्या औरत औरत की दुश्मन है ? —कमला भसीन	16
जागो बहनो—कविता —रामकु देवी	17
महिला जागृति केंद्र —वीणा शिवपुरी	19
सखी समावेश—एक रपट —प्रतीक्षा तिवारी	21
प्रेरकों ने लिखा है	24
नाटक संकलन की समीक्षा —जागोरी समूह	26
फूलमती की कहानी —हेम भटनागर	28
हमें शिकायत है	31
लड़ाई जारी है	31
आखर बोले अपनी बात	32
पढ़ लो बहनो गांव की	

सहयोग मंडल

कमला भसीन

सुहास कुमार

वीणा शिवपुरी

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

'जागोरी' समूह

प्रतिभा गुप्ता

अमित मुखर्जी

(चित्रांकन : मुख्य पृष्ठ)

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा अनुदानप्रदत्त; डाक्टर शारदा जैन (सेवाग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रेस (सी.बी.टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित ।

हमारी बात

पिछले हफ्ते हम पानीपत (हरियाणा) की 'चौथी लड़ाई' देखने गए। यह लड़ाई खास किस्म की है। इसके हथियार बम-गोले, टैंक-बंदूक नहीं। न ही यह लड़ाई जमीन-जायदाद या सत्ता हथियाने की है। यह लड़ाई है निरक्षरता के दानव को खत्म करने की। इस लड़ाई का एक ही नारा है—

पानीपत की चौथी लड़ाई
अनपढ़ सारे करें पढ़ाई

कुछ बहनें शायद सोचें कि पहली तीन लड़ाइयां कौन सी थीं? क्या वे भी इसी तरह की थीं?

हमारे देश के इतिहास में पानीपत की तीन लड़ाइयां मशहूर हैं। वे तीनों लड़ाइयां मुगल बादशाहों और उस समय देश के शासकों के बीच हुई थीं। उनका मकसद केवल अपना राज्य कायम करना था। निरक्षरता के विरुद्ध इस चौथी लड़ाई का मकसद अज्ञानता के अंधकार को दूर करना है।

आज हमें देश के कोने-कोने में ऐसे ही जंग छेड़ने हैं। शिक्षा ही गरीबों और औरतों को उनके हक दिलाएगी, समाज में उनका दर्जा सुधारेगी। पढ़ना-लिखना सीख कर औरत अपनी किस्मत खुद लिख सकेगी। घर की चारदिवारी में बंद औरत के लिए शिक्षा वह खूबसूरत खिड़की है जो एक विराट और खूबसूरत दुनिया में खुलती है।

हमारा सब पढ़ी-लिखी बहनों से अनुरोध है कि वे साक्षरता आंदोलन में जुड़ कर अपना फर्ज निभाएं। दो-चार, छः-आठ, जितनों को हो सके पढ़ाएं। अनपढ़ बहनों को पढ़ने के लिए प्रेरित करें। उन तक यह संदेश जरूर पहुंचाए कि पढ़ने-लिखने का जो भी मौका मिले उसका लाभ उठाएं।

संपादिका

आखिर कब तक !

आखिर कब तक!

सुहास कुमार

महिलाओं के प्रति हिंसा क्या-क्या डरावने रूप ले सकती है? इन सबको ज़्यादातर अलग-अलग घटनाओं के रूप में लिया जाता रहा है। उन्हें यही महसूस कराया जाता रहा है जैसे गलती उनकी ही हो। कुछ अपराध बोध, कुछ संस्कारवश, कुछ हीन भावनावश वे खामोश ही रहती हैं।

कुछ साल पहले की बात है। तब मैं गोरखपुर में रहती थी। मेरी छोटी बहन मेरे पास आई थी। उसका बच्चा वहीं होना था। हम अस्पताल में थे। एक दिन शाम को कुछ दूर के कमरे से बहुत ज़्यादा रोने-चीखने की आवाज़ें आ रही थीं। मुझसे रहा नहीं गया।

पता चला कि वह लड़की दर्दों की वजह से नहीं बल्कि इस डर से रो रही थी कि कहीं तीसरा बच्चा भी लड़की ही न हो जाए। 4 और 2 साल की बच्चियों की मां खुद भी बच्ची सी ही लग रही थी। उसकी डरी सहमी आंखें मैं आज भी भूल नहीं पाती हूं। उसे धमकी दी गई थी कि अगर तीसरी भी लड़की हुई तो उसे मायके भेज दिया जाएगा। दो दिन बाद उस लड़की ने खिड़की से छलांग लगा दी थी। तीसरा बच्चा भी लड़की ही पैदा हुई थी।

कुछ दिन पहले हमें श्रीमती सुमन कोलंगटवार से चंद्रपुर (महाराष्ट्र) में हुए एक महिला शिविर की रिपोर्ट मिली। शिविर में महिलाओं की आपबीती आपको बताना चाहूंगी। चिमूर गांव की महिला कुली येरावा ने बताया उसके एक के बाद एक दो लड़कियां हुईं। सास, ननद, पति सब उसे बहुत तकलीफ़ देते थे। यह कह कर उसे घर से निकाल दिया गया कि उसके तो लड़का होगा ही नहीं। कोर्ट में गुज़ारे के लिए केस किया। वह जीती भी मगर पति पैसा देता नहीं। वह क्या करे?

रशीदा बेगम ने रोते-रोते बताया—उसके एक लड़की है। उसके पैदा होने के गम ने उसके पति को शराबी और जुआरी बना दिया। यह उसके पति का कहना है और उसे घर से बाहर निकाल दिया गया।

सावित्री ने बताया कि उसका पति उसे और उसकी लड़की को बेचने निकला। विम्मी ने बताया कि उसके पति ने उसके पिता से 2000 रु० की मांग की थी। गरीब पिता कहां से देता। अब पति ने दूसरी औरत रख ली। उसे घर से निकाल दिया। एक युवती ने बताया उसके तो बेटा पैदा हुआ पर पति का कहना है कि उसका बाप कोई और है। इस वजह से उसे घर से निकाल दिया। कई बार शादी तो लड़के कर लेते हैं, फिर छोड़कर भाग जाते हैं।

नए रास्ते ढूंढें

मां-बाप के घर में सहारा नहीं मिलता। भाई-भाभी चैन से रहने नहीं देते। कुछ तो पढ़ी-लिखी न होने की वजह से, कुछ गलत सोच की वजह से। तुरंत नौकरी भी नहीं मिलती है।

कारण अकारण मारपीट, पिता से आर्थिक सहायता के लिए दबाव डालकर तंग करना। घर-घर की कहानी है। घर-बच्चों की पूरी जिम्मेदारी उनकी रहती है। पति की आमदनी कितनी है विरली ही जानती होंगी। जो भी पति मर्जी से दे दे। मरखप कर घर तो चलाना ही है। काम बाहर भी करती हैं तो दोहरा बोझ भी सहती हैं।

इस भयावह स्थिति से निकलने के रास्ते हमें ही ढूंढने होंगे।

मासूम लड़कियां घरों में, ससुराल में मरती हैं। अपराधी खुले आम घूमते हैं। असल में हमें ऐसे हालात बनाने होंगे कि लड़कियों को मरना न पड़े। जिंदगी से जूझने के लिए उन्हें पूरी तरह तैयार करना होगा। लड़की को यह सोचकर नहीं पालना होगा कि उसे ब्याह कर पति के घर जाना है जहां उसे सब सुख हासिल होंगे। यह सच्चाई से कोसों दूर है।

लड़की को एक स्वतंत्र व्यक्ति की तरह पालना होगा। उसके सभी जन्मजात गुणों को विकसित होने का मौका देना होगा। उसे शिक्षित करना होगा। उसे सम्मानपूर्वक स्वतंत्र जीवन जीने के लिए जो भी चाहिए देना होगा। उसे अपने पर भरोसा हो, वह अपना भला बुरा सोच सके, अपनी बात कह सके, सब ज़रूरी चीज़े हैं। लालची, लोभी लड़कों और उनके माता-पिता का बहिष्कार करना होगा।

गांधीजी ने कहा था

गांधीजी ने 'यंग इंडिया' पत्रिका (अक्टूबर 1929) में कहा था—

"हिन्दू संस्कृति ने पत्नी को पति के बहुत आधीन रहने और पति में पूर्ण रूप से खो जाने पर ज़ोर देकर बहुत गलती की है। फलस्वरूप पति कभी-कभी अपने अधिकार का अर्जन और प्रयोग सीमा से बाहर करता है। उसका व्यवहार क्रूरता के निम्नतम स्तर तक गिर जाता है। **इस तरह की ज़्यादतियों का इलाज़, कानून के ज़रिए नहीं, स्त्रियों की सही शिक्षा से होगा। ऐसे पतियों के अमानवीय व्यवहार के विरोध में जनमत तैयार करना होगा।**

"अगर कोई लड़की प्रताड़ित है तो उसके भाई व रिश्तेदारों को यह कह कर हाथ नहीं झाड़ लेना चाहिए कि अब जैसे भी हो उसे पति के साथ ही रहना है। वह क्यों एक गुनाहगार पति के साथ ज़िंदगी बिताए? उसे अलग सम्मानपूर्वक ज़िंदगी बिताने का पूरा मौका मिलना चाहिए। उसे पति को मारपीट के जुर्म में सज़ा दिलवानी चाहिए। पति से भरण-पोषण की मांग करनी चाहिए।"

गांधीजी के विचार बहुत प्रगतिशील थे। हम में से कितनी स्त्रियां यह दावा कर सकती हैं कि उनके पुरुष संबंधियों के विचार प्रगतिशील हैं? हमारी सोच कब बदलेगी?

□

समय आ गया है

वीणा शिवपुरी

"समय आ गया है
एक आंदोलन पुकारता है तुम्हें
चाहता है तुम्हारी ताकत, तुम्हारी मदद
तुम्हारी आवाज, तुम्हारा सहारा
ताकि हाथ थाम सकें बच्चियों के
आओ
उन्हें बचाएं, उन्हें जिलाएं
उन्हें पढ़ाएं, उन्हें दुलराएं
समय आ गया है।"

(साभार, विमेंस लिंक)

हमने पाया है कि परिवार में लोगों के स्वास्थ्य का संबंध है उनके दर्जे से। दर्जे से जुड़ा है खान-पान। अच्छा पौष्टिक और ज़्यादा खाना अथवा रूखा-सूखा बचा हुआ खाना। जहां तक दर्जे का सवाल है परिवार में औरत और बेटियों को आखिरी सीढ़ी पर रखा है। इसीलिए सब को खिला कर खाना गुण बन गया। आधे पेट खा कर पानी पी लेना उनका आदर्श हो गया। ऐसे घरों की बेटियों की सेहत कैसे अच्छी हो सकती है?

यह समाज तो जन्म से पहले से ही उसके साथ दुश्मनी करने लगता है। गर्भजल की जांच करवाकर लोग पेट की बच्चियों को गिरवा देते हैं। अगर बच्ची ने जन्म ले भी लिया तो लापरवाही और दुतकार के माहौल में। उसके लिए मां का दूध कम। प्यार-दुलार कम। खाना-पीना कम। खेल-कूद, घूमना कम, मान-सम्मान कम। दूसरी तरफ़ उसे मिलता है ज्यादा काम और मेहनत। ज्यादा रोक-टोक और पाबंदी।

बचपन के रोग

मां का दूध कम मिलने से उसके शरीर में बीमारी से लड़ने की ताक़त कम होती है। ऊपर की खुराक भी कम मिलती है। आमतौर पर छोटी बच्चियां लड़कों की तुलना में कम वजन की होती हैं। मां-बाप उनके टीकों के प्रति ज्यादा लापरवाही बरतते हैं। इन सबकी वजह से बचपन के सभी रोग लड़की को जल्दी पकड़ते हैं। जैसे दस्त, खसरा, बुखार, सूखा वगैरह। यह भी देखा गया है कि कमजोर बच्चे के लिए छोटी-मोटी बीमारी भी जानलेवा बन जाती है। इसलिए जन्म से चार साल तक के बच्चों की मृत्यु दर में बड़ा हिस्सा लड़कियों का है।

काम का बोझ

इस कुपोषण और कमज़ोरी में ही उस पर काम का बोझ लाद देते हैं। चार-पांच साल की बच्ची घर का काफी काम करने लगती है। छोटे भाई-बहन को संभालना। लकड़ी चुनना। गोबर उठाना। उपले थापना। झाड़ू-बुहारू। साल, दो साल बाद ही उस पर रोटी पकाने की जिम्मेदारी भी पड़ जाती है। वो भी मां की तरह मुंह-अंधेरे उठती है। दिन भर काम में जुटी रहती है। बचा-खुचा खाती है।

माहवारी

प्रकृति तो अपना काम करती ही है। ख़राब सेहत और कमज़ोरी में ही उसे माहवारी शुरू हो जाती है। हर महीने जाने वाले खून से उसकी कमज़ोरी बढ़ती है। ऐसे समय में लड़की को खून और ताक़त बढ़ाने वाले भोजन की ज़रूरत है। जैसे हरी सब्ज़ियां, गुड़, चना, दालें, अनाज, घी या तेल। एक तरफ़ तो गरीबी और मंहगाई की मार। दूसरी तरफ़ लड़की की बेकद्री की मार। दोनों के बीच पिस जाती है यह बच्ची।

खराब सेहत के कारण माहवारी में गड़बड़ी आम बात है। कभी खून कम आता है। माहवारी का चक्र गड़बड़ा जाता है। टांगों और पिंडलियों में ऐंठन या बांयटे पड़ते हैं।

मानसिक चिंता

माहवारी का संबंध शरीर के भीतर बनने वाले हारमोन से है। इनसे माहवारी के अलावा शरीर में और परिवर्तन भी आते हैं। लड़की के स्तनों में भराव आता है। कुछ अंगों पर बाल निकलने लगते हैं। उसके मन में उथल-पुथल होती है। वह नहीं जानती खून कहां से आता है। क्यों आता है। शरीर में बदलाव कैसे हो रहा है। वह घबराती है, डरती है। ऐसे समय में ज़रूरत होती है कि कोई शरीर की जानकारी दे। प्यार से समझाए, हिम्मत बंधाए।

ब्याह और बच्चे

जिस बच्ची को अपने शरीर का होश नहीं। मां-बाप उसे ब्याह देते हैं। माहवारी आते ही या उससे पहले गौना कर देते हैं। उसे स्त्री-पुरुष संबंध का पूरा ज्ञान भी नहीं होता। होता भी है तो सुना सुनाया , अधकचरा ज्ञान। उसके कच्चे शरीर पर ब्याह और बच्चों का बोझ बहुत भारी पड़ता है। लड़की की सेहत बनने से पहले ही टूट जाती है।

समाज और सरकार का रवैया

परिवार के लिए तो बेटी घूरे पर पड़ा बीज है। जी जाए तो उसकी किस्मत। मर-खप जाए तो भी ठीक। इसलिए छोटी लड़की की सेहत की तरफ कोई ध्यान नहीं देता। अगर कुछ रिवाज हैं भी तो ऐसे जो उसके खिलाफ़ जाते हैं। लड़की को अंडा मत दो गर्मी करेगा। दूध-घी मत दो जल्दी जवान हो जाएगी। ऐसी बातें आज भी सुनने में आती हैं। इन बातों के पीछे लड़की के गिरे हुए दर्जे के अलावा कुछ नहीं।

गिरा हुआ दर्जा तो औरत का भी है लेकिन समाज को औरत की जरूरत है। घर-बार संभालने के लिए। काम में मदद के लिए। बच्चे पैदा करने के लिए। इसलिए चाहे अपने ही मतलब के कारण औरत को जापों के वक्त खाने-पीने, आराम का रिवाज है। लड़की को तो अच्छा खाना कभी नसीब नहीं बल्कि उसकी मनाही है।

अब तक सरकारी रवैया भी कुछ ऐसा ही था। औरत की सेहत को सिर्फ़ प्रजनन से जोड़ कर

देखा जाता था। जब तक वह बच्चे पैदा करने लायक नहीं होती उसकी अच्छी-बुरी सेहत की कोई चिंता नहीं। हमारी स्वास्थ्य सेवाएं भी यही नज़रिया रखती रही हैं।

बदलाव की हवा

लड़की या औरत पहले एक इंसान है। घर के बाकी लोगों की तरह उसका भी बराबर का हक़ है। फिर लड़की या औरत होने के नाते उसकी ज़रूरतें बढ़ जाती हैं। माहवारी, गर्भ, बच्चा पैदा करना, उसे दूध पिलाना। ये सब उसकी सेहत पर बोझ डालते हैं। ज़ाहिर है इनकी ख़ातिर उसे ज्यादा ताक़तवर खाना मिलना चाहिए।

उसके स्वास्थ्य की देखभाल ज़्यादा होनी चाहिए। बीमारी के समय तुरंत इलाज मिलना चाहिए।

आओ
उन्हें बचाएं, उन्हें जिलाएं
उन्हें पढ़ाएं, उन्हें दुलराएं
समय आ गया है।

□

"दिन भर डर कर जीती हूं रातों को सहमी रहती हूं"

जुही जैन (जागोरी समूह)

कितना मुश्किल है हर वक्त डरते हुए जीना। घर में डर, सड़क पर डर, खेत-खलिहान, कारखाने में डर। इस 'महान' देश में औरत को देवी का रूप माना जाता है। इसी 'महान' देश में उसके साथ दिनदहाड़े बलात्कार होता है। मार-पीट, छेड़खानी, यौन अत्याचार होते हैं। यह बालिका दशक है। आने वाले दस सालों तक भी लड़कियों की बेहतरी के लिए काम किया जाएगा। सरकार लड़कियों के लिए नई योजनाएं बना रही है। लेकिन आंकड़े यह बताते हैं कि हर छः मिनट में एक लड़की के साथ बलात्कार होता है। समाज का यह कैसा दोहरा रूप है?

हाल में 27 जुलाई को अखबार में खबर छपी।

पुरुष—नामी, पैसे वाला और अधेड़। हैदराबाद के एक बड़े होटल में अफसर।

लड़की—ग़रीब और अबोध। तेरह साल की बच्ची जो पेट भरने के लिए नौकरानी का काम करती थी। स्थानीय अखबारों ने डी.वी.टी. अयंग्गर नाम के इस आदमी पर इल्ज़ाम लगाया है। इस आदमी ने घर में काम करने वाली बच्ची को दो महीने घर में कैद रखा। लगातार उसके मुंह में कपड़ा ठूंसकर उसके साथ बलात्कार किया। खोज-बीन से जो कहानी सामने आयी वह यह है—

अयंग्गर उर्फ़ चारयुलु ने अपनी पत्नी और विकलांग बच्चे को छोड़ दिया था। वह रानी नाम की 'कैबरे' नाच करने वाली औरत के साथ रहने लगा। उन दोनों की एक चार साल की बेटी थी। घर का काम करने और बेटी को संभालने के लिए रानी ने एक गरीब लड़की को रख लिया। कुछ दिन पहले रानी अपनी बेटी और अयंग्गर को छोड़कर चली गई। रानी के जाने के बाद अयंग्गर ने इस छोटी-सी लड़की के साथ बलात्कार किया। यह रोज़ाना का किस्सा बन गया। बाहर जाते वक्त वह लड़की को ताले में बंद कर देता था। लड़की ने अपने मालिक के ड्राइवर से मदद मांगी। वह ड्राइवर मधु भी इस ज़ुर्म में शामिल हो गया। अब उस पर अत्याचार करने वाले दो लोग थे।

लड़की के पेट में सख्त दर्द रहने लगा। जब सहा न गया तो बड़ी मुश्किल से उसने पड़ौसियों को बताया। पड़ौसियों ने तुरंत वहां की एम.एल.ए. श्रीमती लाज़ारस को बताया। इस तरह उस छोटी-सी बच्ची को इन राक्षसों के पंजे से छुड़ाया गया। लड़की ने पुलिस को बताया कि जब अयंग्गर ने पहली बार बलात्कार किया था तो उसके कपड़े फाड़ डाले थे। वे कपड़े लड़की के पास ही थे। डाक्टरी जांच से पता चला कि लड़की को दो महीने का गर्भ है। पुलिस ने अयंग्गर और मधु को नशे की हालत में गिरफ्तार कर लिया।

इस तरह के मामलों में ज़मानत नहीं होती। दोनों अपराधी जेल में हैं। सवाल यह है कि क्या इस गरीब लड़की को न्याय मिलेगा। अयंग्गर के पास पैसा है। वह बड़े वकील कर सकता है। वह लड़की के गरीब मां-बाप को पैसे का लालच दे सकता है। कई तरीके हैं जिनसे वह बच सकता है।

महिला संगठनों का तजुर्बा है कि ऐसे मामलों में 95फी सदी अपराधी छूट जाते हैं। औरत शारीरिक और मानसिक दुख उठाती है। समाज उसे बदनाम करता है। मर्द किसी और लड़की को शिकार बनाने के लिए खुले आम घूमता है।

आज औरतें इस सवाल को उठा रही हैं। महिला संगठन भी कमर कस के काम कर रहे हैं। आखिर कब तक औरतों के साथ नाइंसाफी होती रहेगी? यह लड़की तेरह साल की आयु में मां बन जाएगी। अभी तो उसने अपना बचपन भी पार नहीं किया। इसका भविष्य क्या होगा? क्या वह फिर किसी मर्द पर विश्वास कर पाएगी? क्या वह फिर से एक आम ज़िंदगी जी पाएगी? डर उसकी ज़िंदगी का अहम हिस्सा बन जाएगा। उसके

साथ जो कुछ हुआ है उसे कोई कानून मिटा नहीं सकता। कोई समाज उसकी भरपाई नहीं कर सकता।

लेकिन अभियुक्तों को कड़ी सजा देकर उसके घावों पर मरहम लगाया जा सकता है। उसके साथ इंसाफ करके उसका विश्वास लौटाया जा सकता है। सभी सबलाओं से मेरा अनुरोध है कि इस अत्याचार के खिलाफ़ आवाज़ उठाएं। ज़रा सोचिए तो

''देश में गर बेटियां
अपमानित है, नाशाद हैं
दिल पे रख के हाथ कहिए,
देश क्या आज़ाद है? □

आड़े समय का साथी—स्त्रीधन

सुधा के माता-पिता उसके बचपन में ही गुज़र गए थे। बड़े भाई ने पाला-पोसा, बड़ा किया। उसे दसवीं तक पढ़ाया, फिर ब्याह किया। ब्याह के बाद वह गांव से शहर आई। सुधा का पति रमेश एक छोटी-सी दुकान चलाता था। घर में सास-ससुर और दो देवर थे। ब्याह के लेन-देन से सभी नाराज़ थे। वह सारे घर का काम करती। पर कोई सीधे मुंह बात भी न करता। रोज़ उसे ताने सुनने को मिलते। हंसमुख सुधा एक कान से सुनती और दूसरे से निकाल देती।

धीरे-धीरे सुधा ने आसपास जान पहचान कर ली। उसके पड़ौस में सुशीला रहती थी। पढ़ी-लिखी, सच में सुशील लड़की। सुशीला एक महिला संस्था में काम करती थी। दोनों सहेलियां मिल कर किताबें पढ़तीं। समाज के बारे में बातचीत करतीं। अपने सुख-दुख आपस में बांटतीं।

समय बीतता गया पर सास-ससुर की नाराज़गी कम नहीं हुई। तीज-त्यौहार पर उपहार नहीं आए तो सास ने खूब बोल सुनाए।

सुधा ने समझाया:

—"मां, मेरे भैया ने पाला-पोसा। मेरा ब्याह किया। अब कब तक वो मुझे देते रहेंगे? उनके अपने बाल-बच्चे भी हैं।"

सास-ससुर की समझ में एक बात न आई। रमेश सुबह से शाम तक दुकान पर रहता। शाम को लौटता तो वह भी सुधा पर ही चिल्लाता। बेचारी सुधा किससे अपना दुखड़ा कहती। केवल सुशीला ही उसे हिम्मत दिलाती। सुशीला ने उसे पंडिता रमा बाई की जीवनी पढ़ने को दी। सुधा अच्छी-अच्छी किताबें पढ़ती। उसके मन की ताक़त बढ़ती गई। अन्याय के ख़िलाफ़ बोलने की हिम्मत भी आने लगी।

एक साल बीत गया। एक दिन रमेश और

सास-ससुर ने कहा, "दुकान में घाटा हुआ है। तुम अपने भाई से पांच हज़ार रुपए ले कर आओ।"
सुधा ने फिर समझाया—

"भैया बेचारे इतनी बड़ी रक़म कहां से लाएंगे?"

"क्यों, क्या वे हमारे लिए कर्ज़ नहीं ले सकते," रमेश ने चिल्ला कर कहा।

"आपके लिए वे कर्ज क्यों लें।? आप ही कर्ज क्यों नहीं ले लेते?" सुधा ने कहा।

बस जैसे आसमान फट पड़ा हो। उसके सास-ससुर और रमेश उस पर टूट पड़े। "हमसे ज़ुबान लड़ाती है?"

"बहू की इतनी हिम्मत।"

सबने मिलकर उसे रूई की तरह धुन दिया। सुधा का शरीर चोट से दुख रहा था। उसका मन अपमान से जल रहा था। क्या औरत को कुछ भी सोचने और बोलने का हक़ नहीं?

क्यों?

क्या भगवान ने उसे आदमी की तरह दो हाथ-पैर नहीं दिए?

क्या उसके पास दिल और दिमाग नहीं? वह जान गई इस घर में उसे प्यार और इज़्ज़त नहीं मिलेगी।

उसने अपने आंसू और खून की बूंदें पोंछीं। वह उठी और घर से बाहर निकल गई। उसने रात महिला संस्था के आश्रय घर में बिताई।

अगले दिन वकील से बात की। अब सुधा ने संस्था के वकील और पुलिस को अपने साथ लिया। वह अपने ससुराल गई और रमेश से बोली।

"मुझे शादी में मिला पूरा रुपया और सारा सामान वापिस चाहिए। उस पर मेरा हक़ है। आप लोगों ने मेरी शराफ़त को कमज़ोरी समझा। मैं आपके साथ नहीं रहूंगी।"

"अरे जा जा। अभी दो हाथ दूंगा," रमेश ने हमेशा की तरह उसे डांटा।

पीछे खड़ी वकील अब आगे आई। उसने समझाया। **"शादी में मायके और ससुराल से सुधा को जो कुछ मिला वह उसका स्त्रीधन है।"**

"वाह साहब, उसमें मेरा भी तो आधा हक़ है।" रमेश ने कहा।

"नहीं। स्त्रीधन पर पति का कोई हक़ नहीं। चाहे वह कपड़ा-लत्ता, जेवर-चांदी या बर्तन हों। उसकी हर चीज़ वापिस करनी पड़ेगी।"

"आप क्यों बीच में बोलती हैं। यह हमारा घरेलू मामला है।"

"नहीं रमेश। पिछले एक साल से तुम सब लोग उसे तंग कर रहे हो। तुम लोगों ने उसे मारा-पीटा है। तुमने जुर्म किया है। जुर्म घरेलू मामला नहीं होता। समाज का मामला है।" अब तो सब घबराए।

"अरे बहू, तेरा भाई कब तक खिलाएगा?"

"मैं किसी पर बोझ नहीं बनूंगी। मैं अपने स्त्रीधन से कोई काम-धंधा करूंगी।"

"तो क्या तू मुझे तलाक़ दे देगी," रमेश ने डरते-डरते पूछा।

"अभी नहीं कह सकती। कुछ दिन अलग रह कर सोचूंगी। आप भी सोचिए। आपको एक साथी चाहिए या गुलाम। मैं गुलाम नहीं हूं।" □

नई दिशा में उठते कदम

सुहास कुमार

दिल्ली के एक शानदार इलाके बसंत बिहार के पास बसी है एक बस्ती "कुसुमपुर पहाड़ी।" वहां हज़ारों की संख्या में हैं झुग्गियां और उनमें बसती जिंदगानियां। वैसे तो यह आम बस्तियों की ही तरह है। मगर यहां एक खास बात हुई है जिसने इसे और बस्तियों से अलग खड़ा कर दिया है। इसी बात का आकर्षण मुझे वहां तक खींच ले गया।

जब सुबह के 11 बजे हम वहां पहुंचे तो ज़्यादातर औरतें अपने सुबह के काम करके लौट आईं थीं। वह पास के बंगलों-कोठियों में बर्तन धोने, सफ़ाई आदि का काम करती हैं। अब उनके घर का काम शुरू हो गया था। कोई कपड़े धो रही थी, कोई खाना बना रही थी तो कोई सौदा-सुल्फ लेने गई हुई थी।

बस्ती की औरतों के साथ उनकी कठिनाइयों, समस्याओं को समझकर मार्ग सुझाने वाली बहनों में एक हैं रंजना सबरवाल। मैं उन्हीं के साथ बस्ती में गई थी। वह सीधे मुझे 'क्रेश' में ले गईं। उस समय क्रेश में 8-10 बच्चे थे जो टिफिन खा रहे थे—सूखे चावल या रोटी।

क्रेश, एक वरदान

रंजना ने बताया कि बस्ती की एक बहुत दीगर और समझदार औरत है सोनिया। सोनिया ही यह क्रेश चलाती है। शुरू में यह सामूहिक प्रक्रिया के रूप में शुरू हुआ था कि बारी-बारी से औरतें बच्चों की देखभाल किया करेंगी। मगर धीरे-धीरे सारी ज़िम्मेदारी सोनिया के कंधों पर आ गई। इस समय क्रेश में 16 बच्चे हैं। क्रेश में 2-3 साल से लेकर 7-8 साल तक के बच्चे हैं। उस समय सोनिया की 12 साल की लड़की बच्चों को देख रही थी और सोनिया बस्ती के कुछ बच्चों का दाखिला कराने स्कूल गई हुई थी। जब वह वापस आई तो काफ़ी खुश थी। 4 बच्चों को स्कूल में दाखिल करा आई थी।

सोनिया बताने लगी—मांएं बड़े बच्चों को भी क्रेश में छोड़ जाती हैं। अब, छोटे बच्चों को देखूं कि बड़ों को पढ़ाऊं। मांओं से पूछो कि स्कूल क्यों नहीं भेजतीं तो कहती हैं बच्चों के बाप को फुरसत ही नहीं मिलती है। खुद अनपढ़ होने की वजह से स्कूल जाते हिचकिचाती हैं। उन्हें अपने पर इतना भी भरोसा नहीं है कि वह वहां ठीक से बात कर पाएंगी।

सोनिया से मैंने पूछा—"क्रेश क्यों खोला?" उसका उत्तर था, "घर की बड़ी लड़कियां स्कूल जा सकें। छोटे भाई-बहनों की देखभाल की, घर में मां के काम में हाथ बटाने की जिम्मेदारी घर की बड़ी लड़कियों पर आ जाती है। अब मांएं छोटे बच्चों को छोड़कर निश्चिंत होकर काम पर जा सकती हैं।"

क्रेश में सुबह 7 बजे से 10.30 तक ज़्यादा बच्चे रहते हैं। 11 बजे तक ज़्यादातर मांएं बच्चों को ले जाती हैं। सोनिया को फी बच्चा 10 रु० मिलता है। शुरू में स्थापित

करने में कुछ मदद के अलावा सोनिया को कोई मदद नहीं मिलती है।

मगर हम सोनिया के क्रेश के बारे में बात करने नहीं गए थे। हमें पता चला था कि यहां की औरतों ने यूनीसेफ की एक स्कीम के तहत् हैंडपंप की मरम्मत का काम सीखा है और वे ही अब बस्ती के 23 हैंडपंपों के रख-रखाव का काम करती हैं।

हैंडपंप मरम्मत ट्रेनिंग

शुरू की ट्रेनिंग सख्त गर्मी में हुई। जून का महीना, कड़कती धूप। पहले ही दिन एक साल से खराब पड़ा पंप खोला गया। रात के बारह बजे तक औरतें उससे जूझती रहीं और ठीक करके ही दम लिया। उनकी खुशी का वारापार न था।

शुरू में कुसुमपुर पहाड़ी की 25 और कनकदुर्गा की 6 औरतें उससे जुड़ीं। लेकिन धीरे-धीरे उससे कटती गईं। कारण अनेक थे। मगर खास यह था कि जितना पैसा वह सोच रहीं थीं उतना मिला नहीं। तय यह हुआ था कि 4 महीने तक उन्हें 25 रु० प्रति पंप के हिसाब से मिलेगा। सबमें बंटने पर वह रकम बहुत ही कम थी। उन्हें एक लालच यह भी था कि शायद सरकारी नौकरी मिल जाएगी।

उन्हें डी.डी.ए. के तहत् काम करना होता है। पहले जो लेबर काम करती थी उनके हेड मिस्त्री को 39 रु० और लेबर को 29 रु० के हिसाब से दिहाड़ी मिलती थी। उन्होंने सोचा कम से कम 29 रु० दिहाड़ी उन्हें भी मिलेगी।

अंत में सिर्फ 6 महिलाएं बचीं। सोनिया,

संतोष, सुबलक्ष्मी, भारती, पिंगला और गुलाब। सोनिया हाईस्कूल पास है। सुबलक्ष्मी कक्षा 8 तक पढ़ी है। बाकी सभी अनपढ़ हैं।

एक चुनौती

संतोष और सुबलक्ष्मी ने बताया कि पहले तो हम रोज़गार के लालच से ही जुड़े थे। बाद में यह काम हमारे लिए एक चुनौती बन गया। पड़ोसियों के ताने भी कम नहीं सुनने पड़े। "जब हम घरों से निकल कर पंप तक जातीं तो लोग कहते—ये बड़ी इंजीनियर बनेंगी। इनसे घर तो संभलता नहीं है। पहले घर संभालें, फिर कुछ और करें। बड़े जोश से निकली हैं। क्या यह इनके बस का काम है?" आदि-आदि।

इनको यह भी लगा कि यदि वे यह काम सीख लेंगी तो पानी की दिक्कत भी दूर हो जाएगी। मरम्मत के लिए डी.डी.ए. का मुंह देखना पड़ता है। कभी तो वह जल्दी आ जाते थे कभी महीनों पंप खराब पड़ा रहता था। फिर पानी दूर से लाना पड़ता था।

सोनिया ने बताया इस समय बस्ती के सभी पंप ठीक चल रहे हैं सिर्फ एक को छोड़कर। हमारे सामने ही उन्होंने दो तीन बार एक दूसरे को याद दिलाया कि कल सुबह वह पंप खोलना है। हमने पूछा ठीक होने में कितना वक्त लगेगा। "सुबह 7 बजे खोलेंगें। सारा दिन तो लग ही जाएगा।" हमने पूछा— "मरम्मत में अगर कोई हिस्सा बदलना हो तो कहां से आता है।" उन्होंने बताया वह डी.डी.ए. के दफ्तर से मिलता है।

उन्हें प्रति पंप 25 रु० महीने के हिसाब से ही अभी तक मिल रहा है। छह लोगों में बंटकर हर एक के हिस्से में 88 रु० 50 पैसे आते हैं। पैसा अभी चाहे ज्यादा न मिल रहा

हो पर उन्हें विश्वास है कि उनकी तनख्वाह ज़रूर बढ़ेगी। इस संबंध में वह एक बार स्लम कमिश्नर से भी मिल चुकी हैं। दुबारा मिलने की बात इसी हफ्ते थी।

चाहे पैसा उन्हें अभी कम मिल रहा हो, पर उनका कहना था, "हमें बहुत कुछ मिला है। हमने पहला पंप जो मरम्मत किया वह 9 महीने तक ठीक चला।" बस्ती वालों का रवैया बिलकुल बदल गया है। उन्हें पूरा भरोसा है कि हम पंप ठीक कर लेंगी। सबसे बढ़कर उनका अपने ऊपर आत्मविश्वास बढ़ा है।

एक कहती है, "हमें लगता है कि मौका मिले तो हम कुछ भी कर सकती हैं।" अब प्लम्बिंग और राजमिस्त्री के काम की ट्रेनिंग की बात चल रही है। यह सब उसे करने की सोच रही हैं। "हर पंप की मरम्मत से हमें कुछ नया सीखने को मिलता है।"

बात धीरे-धीरे पढ़े-लिखे और अनपढ़ होने पर आ गई। यह सभी शिक्षित होने के महत्व को समझती हैं। उन्होंने बताया कि पास में डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल में इतवार को प्रौढ़ शिक्षा की कक्षाएं लगने की बात सुनकर बस्ती की कुछ औरतें गईं। चूंकि वह अंग्रेजी में बात नहीं कर सकती थीं, बात समझ नहीं सकती थीं उनके फार्म उठाकर फेंक दिए गए। फिर वह रंजना की ही तरह काम कर रही अनीता बहन को साथ ले गईं। तब जाकर उन्हें दाख़िला मिला।

सोनिया का तो बस्ती में मान है ही। इन छहों महिलाओं की भी बस्ती में एक ख़ास जगह है। □

सबला के लेखों पर चर्चा

मंजु दत्ता

सबला पत्रिका पर पक्का बाग़, चिकसाना, बछाम्दी (भरतपुर, राजस्थान के तीन गांव) में लेखों को पढ़कर विस्तार से चर्चा की गई। इन लेखों को पढ़कर एक बार तो महिलाओं में बहुत जोश उत्पन्न होता है। लेकिन फिर घर के बंधनों से थोड़ा घबरा भी जाती हैं। इसको देखकर लगता है कि ग्रामीण अंचल की महिलाओं के साथ संगठित होकर उन्हें काम करने की प्रेरणा देने पर लंबे समय तक लगातार कोशिश करते रहना होगा।

लेखों पर प्रतिक्रिया

हमने महिला दिवस मनाया (अप्रैल-मई अंक)

महिलाओं ने कहा हम अभी से महिला दिवस मनाने की तैयारी शुरू करेंगीं। परंतु हम सिर्फ महिलाओं का शिविर लगाएंगी। हम फेरी नहीं लगा सकतीं। हां, छोटी लड़कियां फेरी लगा सकती हैं। हम अपने नाटक तैयार करेंगी। कम से कम 5 गांवों की महिलाएं इकट्ठी होकर कार्यक्रम तैयार करेंगी।

महिलाओं ने इस तरह से अगला 8 मार्च दिवस मनाने का संकल्प लिया है। उनका कहना है कि हम अभी पर्दे के लिए नहीं लड़ सकतीं। लेकिन हमारी और बहुत-सी समस्याएं हैं—पीने के पानी की, स्वास्थ्य सुविधाओं की, गांवों में नालियों व खरंजा बिछने की—जिनको लेकर हम एकजुट होकर लड़ेंगीं।

राजस्थान में बालिका-विकास अभियान

महिलाओं ने कहा हमारे भरतपुर के गांवों को

इस ट्रेनिंग में शामिल क्यों नहीं किया गया, हमारे साथ ऐसा सौतेला व्यवहार क्यों किया गया। जब कि हम आपके साथ कब से सहयोग कर रहे हैं। क्या हमें कम बुद्धिमान समझा गया। राजस्थान सरकार ने हमें क्यों पीछे छोड़ा।

वैसे हमारे पिछले कार्यक्रम के आधार पर अब लड़कियों को स्कूल भेजना शुरू किया है। इन गांवों के स्कूलों में लड़कियों की संख्या बढ़ी है। जहां प्राइमरी के बाद स्कूल नहीं है वहां आगे की शिक्षा के लिए लड़कियों के कई परिवारों ने 4-5 किलोमीटर दूर के स्कूलों में भी भेजना शुरू किया

है। महिलाओं का कहना है कि आप अगर इसी तरह हमारे साथ जुड़ी रहीं तो परिवर्तन आएगा ही। इतनी जल्दी नहीं जितना आप चाहती हैं। कार्यक्रम थोड़े दिन चलाकर बीच में बंद करने से फिर वह गति नहीं रहती।

इंसाफ की रोशनी

यह लेख करीब 25-30 महिलाओं के बीच पढ़ा गया और इस पर चर्चा हुई। यह सभी महिलाएं अनपढ़ थीं। किसी भी महिला को यह नहीं पता कि उसके पति की आमदनी कितनी है। वह पैसा कहां रखता है। यह लेख पढ़ने के बाद उनके मनों में यह तूफान उठा कि उन्हें यह पता ज़रूर होना चाहिए कि कितनी आमदनी है? कितना खर्च है? कितना बचता है? सभी महिलाओं की राय थी-"कुसुम की ननद इतनी अच्छी कैसे थी। उसने भाभी का साथ दिया। हमारी ननद तो हमारा साथ कभी नहीं दे सकती। हमारे खिलाफ़ ही रहती है।" हमने उन्हें समझाया—"आप औरतों में कम से कम संगठन होना चाहिए। हम औरतें हमेशा औरतों की ही गलतियां ढूंढती रहती हैं। इसलिए आज हमारी यह स्थिति है।"

जब इन महिलाओं ने अपने पतियों से आमदनी का ब्योरा पूछा तो वे भड़क गए। हमने महिलाओं को समझाया था कि "तुम एकदम ऐसा सवाल मत उठाना।पहले यह विश्वास पैदा करना कि हम आपकी आमदनी जानकर आपके खिलाफ़ कुछ करने वाले नहीं हैं। लेकिन हमें आपकी आमदनी और बचत की जानकारी होनी चाहिए। कभी मुसीबत पड़ने पर हमारे काम आ सके।"

इस लेख से महिलाओं पर बहुत असर पड़ा है। महिलाओं में जाट, ब्राह्मण, गड़रिया, माली, जाटव सभी थीं। □

मैं पढ़ना सीख रही हूं
ताकि दुनिया पढ़ सकूं
मैं लिखना सीख रही हूं
ताकि अपनी किस्मत खुद लिख सकूं
मैं हिसाब सीख रही हूं
ताकि अपने अधिकारों का हिसाब ले सकूं

—कमला भसीन

मुहब्बत की हर वक्त मुरली बजाओ
यह आपस के झगड़े-बखेड़े मिटाओ
मुहब्बत से मन का सिंहासन सजाओ
मुहब्बत में डूबे मधुर गीत गाओ
बढ़े इस कदर जोश वतन का
रहे होश न तन, मन, धन का
भाई, बिरादर वतन का लहू न बहाओ

मस्जिद ढाया, मंदिर गिराया
खुदा, ईश्वर को दो क्यों बनाया
मुहब्बत ही धर्म, इमां है वेद कुरान हैं
अपनी आत्मा पर जीत पाओ
दुश्मनी, अदावत, लड़ाई को भूल जाओ
गिलों, सदमों को भूल जाओ
मुहब्बत की हर वक्त मुरली बजाओ

कबीर अकबर टीपू गांधी
बुजुर्गों का तरीका फिर दिखाओ
हर ग़म के दर्द की दवा है मुहब्बत
जिन्हें घर की लड़ाई से फुरसत नहीं
नजीब अब यह पैगाम उनको सुनाओ
मुहब्बत की हर वक्त मुरली बजाओ।

नजीब फ़ातिमा
चाणक्यपुरी, दिल्ली
(नेवी वाइव्स वेल्फेयर एसोसिएशन)

क्या यह सच है कि

औरत औरत की दुश्मन है?, है, तो क्यों

कमला भसीन

जब हम औरतों की कठिनाइयों और उनके साथ होने वाली ज़्यादतियों की बात करते हैं तो अकसर कई स्त्री या पुरुष कह उठते हैं—"आप पुरुषों को ही क्यों दोष देती हैं,औरतें भी तो औरतों की दुश्मन होती हैं। घरों में मांएं ही तो बेटे और बेटी में भेदभाव करती हैं। सास-ननद ही तो बहू को तंग करती हैं। औरतें कहां एक दूसरे को बढ़ावा देती हैं।"

औरतें भी एक दूसरे के साथ ज़्यादती करती हैं—यह सच है। इसे नकारा नहीं जा सकता। लेकिन इस बात पर गहराई से सोचना ज़रूरी है। यह समझना ज़रूरी है कि औरतें क्यों एक दूसरे के साथ दुश्मनी का सलूक या व्यवहार करती हैं। मांएं क्यों बेटियों पर बंधन लगाती हैं? उन्हें क्यों आगे बढ़ने के मौक़े नहीं देतीं।

इस विषय पर खूब बहस करके, सोच कर, हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि बात को ठीक से समझने के लिए हमें पूरे समाज को समझना होगा। अपने सामाजिक ढांचे या व्यवस्था को समझना होगा। लोगों के सोचने के ढंग को समझना होगा। कुछ पुरुषों और स्त्रियों को दोष देने से बात नहीं बनेगी।

पितृसत्ता क्या है?

हमारा सामाजिक ढांचा पुरुष-प्रधान या पितृ-सत्तात्मक है। पितृसत्ता का सीधा-सादा मतलब है पिता या पुरुष मुखिया की सत्ता या उनका राज। पितृसत्ता या पिद्रशाही एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसके तहत पिता या कोई पुरुष मुखिया परिवार के सभी सदस्यों, संपत्ति व आर्थिक साधनों पर नियंत्रण रखता है। वही मुख्य माना जाता है, उसी के नाम से परिवार जाना जाता है। उसके बाद उसकी सत्ता व अधिकार उसके पुत्र या किसी अन्य पुरुष के हाथ में चले जाते हैं। यानि खानदान या वंश पुरुषों से चलता है, जायदाद पर पुरुषों या पुत्रों का हक़ होता है। इसी पितृसत्ता से जुड़ी हुई ये धाराणाएं हैं कि पुरुष स्त्री से ऊंचा व उत्तम है, वह भगवान का रूप है, वह स्त्री का पति, स्वामी या मालिक है; स्त्रियों को हमेशा पुरुषों के आधीन व उनके नियंत्रण में रहना चाहिए। यह विचारधारा स्त्रियों को पुरुषों की संपत्ति का ही हिस्सा मानती है। यहां तक कि स्त्री के शरीर पर भी पुरुषों का हक़ माना जाता है।

पुरुष तो इस विचारधारा को मानते ही हैं लेकिन बहुत सारी स्त्रियां भी इसी तरह सोचती हैं। आखिर औरतें भी तो इसी ढांचे का हिस्सा हैं। हज़ारों सालों से औरतों ने भी तो यही सब देखा और सुना है।

धर्म भी यही सब सिखाते आ रहे हैं। सभी धर्म पुरुषों ने बनाए हैं। पुरुष ही उनकी व्याख्या करते हैं, वे ही चलाते हैं धर्मों को। सभी धर्म पुरुष को अधिक महत्व देते हैं। वे पुरुष को परिवार का मुखिया मानते हैं, पत्नि को पति या

स्वामी या मालिक के आधीन मानते हैं।

धर्मों का प्रभाव हमारी क़ानून व्यवस्था पर है। इसीलिए हमारे क़ानून भी पुरुष-प्रधान हैं। वे पुरुषों को अधिक महत्व और हक़ देते हैं। शिक्षा में, अखबारों, पत्रिकाओं, किताबों, रेडियों, टेलीवीज़न सब में पुरुषों का बोलबाला है। राजनीति, व्यवसाय, संपत्ति सब पुरुषों के हाथ में है। यानि चारों तरफ़ से यही सुनाई देता है कि पुरुष श्रेष्ठ है। औरतों ने यही सब देखा और सुना है। इसीलिए वे भी इसे ही सच मान लेती हैं। यही बातें फिर वे अपने बच्चों को सिखाती हैं—बेटे को आज़ादी, बेटी को बंधन, बेटे को अधिकार, बेटी को कर्तव्य, बेटे को रौब जमाना, बेटी को दबना।

पितृसत्ता को स्त्रियां ठीक उसी तरह मान लेती हैं जैसे बहुत से 'शूद्र' ब्राह्मणों की सत्ता को अपना धर्म समझकर स्वीकार कर लेते हैं।

औरतों के पुरुषसत्ता को स्वीकारने के और भी कई कारण हैं। औरतों को पढ़ने-लिखने, स्वतंत्र रूप से सोचने के अवसर कम दिए जाते हैं। उन्हें सीमित दायरों में रखा जाता है। इसीलिए न वे नया देख सकती हैं, न सोच सकती हैं। इसी वजह से वे उसी पुरानी लकीर पर चलती हैं।

अगर औरतों के दिमाग में पितृसत्ता के बारे में सवाल उठते भी हैं तो भी वे खामोश ही रहना पसंद करती हैं। कारण, उनके अंदर हिम्मत नहीं होती पुरुषों से सवाल जवाब करने की। क्योंकि वे पूरी तरह से पुरुषों पर या तो सचमुच में निर्भर होती हैं या वे यह मानती हैं कि वे निर्भर हैं। ज़्यादातर औरतें खुद इतना नहीं कमातीं कि वे अपना और अपने बच्चों का पेट पाल सकें, उन्हें रहने को घर दे सकें। संपत्ति उनके नाम पर नहीं होती। इसलिए वे पितृसत्ता को चुनौती नहीं दे पातीं। वे पितृसत्ता को और बढ़ाती रहती हैं।

चूंकि औरतें इसी समाज का हिस्सा हैं इसीलिए एक मां ही अपनी बेटी को बेटे से कम परोसती है, कम शिक्षा देती है, कम आज़ादी देती है। कई सासें बहुओं को अपना गुलाम बना लेना चाहती हैं। वे बहुओं की हत्या करने की साजिश में भागीदार होती हैं। मां-बेटी के आपसी तनाव भी अकसर बहुत जटिल व पीड़ादायक होते हैं।

स्त्रियों का योगदान क्यों?

पितृसत्ता की जड़ें इसीलिए इतनी मज़बूत हैं क्योंकि इसे चलाने में इससे शोषित स्त्रियां भी पूरा योगदान देती हैं। पर ऐसा क्यों है? शायद इसलिए कि औरतें बाध्य हैं, उन्हें कोई और रास्ता दिखाई नहीं देता, वे ये जानती ही नहीं कि जीने का कोई

और रास्ता भी हो सकता है। एक मां नौ महीने पेट में बच्चे को पालने के बाद यह सुनकर कि बेटी हुई है, सुबक पड़ती है। प्रसव के दर्द से समाज के तानों का डर अधिक होता है। दोष तो व्यवस्था का है। हर मां जानती है कि वर्तमान व्यवस्था में बेटी का होना क्या मतलब रखता है।

यह भी देखने में आता है कि पिता प्रत्यक्ष रूप से बेटी पर बंधन नहीं लगाते। वे सारे क़ायदे-क़ानून मां के ज़रिए लागू करवाते हैं। खुद भले बने रहते हैं। और फिर हर मां जो एक औरत है इस समाज में औरत होने की पीड़ा को खूब जानती है। इसीलिए अपनी बेटी को सुरक्षित रखने के लिए खुद दरोगा बन जाती है। मां को इस बात का भय हमेशा बना रहता है कि बेटी पर जुल्म न हों, समाज उसे कहीं पवित्रता की कसौटी पर खोटा न करार दे, कोई यह न कह दे कि मां ने कुछ सिखाया ही नहीं। और सिखाने की सारी ज़िम्मेदारी अकसर मां अकेले ही ढोती है। नैतिकता के सारे संदेश उसे ही बच्चों तक पहुंचाने होते हैं और चूंकि प्रचलित नैतिकता पुरुष सत्तात्मक है वे इसे ही थोपती रहती हैं।

पर कई बार मां के दिल को टटोलने पर यह भी देखा गया है कि उसका मन समाज की लगाई आग के धुएं की घुटन से भर गया है। वह कई बार जब खुल कर बोलने की हिम्मत करती है तो कहती है, "अगर मैं पढ़ी लिखी होती, अपने पैरों पर खड़े होने लायक होती तो इतना कभी ना सहती।" बहुत सी मांओं को यह भी अरमान होता है कि जो वे नहीं कर पाईं उनकी बेटियां करें। पर उन्हें अकसर इतनी छूट नहीं होती, उनमें इतनी आर्थिक शक्ति नहीं होती कि वे अपनी बेटियों को सशक्त व स्वाबलंबी बना सकें। वास्तव में औरतें इस ढांचे में पूरी तरह से फंसी हुई हैं।

जहां तक सास और बहू के रिश्ते का सवाल है, एक बस्ती की ग़रीब औरत ने इसे बहुत सरल तरीके से हमें समझाया। वह बोली, जैसे दो ग़रीब देशों की लड़ाई में हमेशा किसी अमीर देश का हाथ होता है वैसे ही दो औरतों की लड़ाई में अकसर किसी पुरुष का हाथ होता है।

सास-बहू के रिश्ते को भी गहराई से समझने की ज़रूरत है। एक सास के लिए बहू आने का मतलब होता है बेटे का बंटवारा। और फिर सास बनकर किसी और पर हुकुम चलाने का भी मौक़ा मिलता है। जिस औरत को कभी कोई पद या सत्ता न मिली हो उसके इस सत्ता का ग़लत इस्तेमाल करने की पूरी संभावनाएं रहती हैं। आखिर वह भी इंसान है और उस में भी वही संस्कार हैं और वही कमियां है जो सब में होती हैं। वह भी पितृसत्ता की विचारधारा की शिकार है। वह भी बेटे की मां होने को बड़ी बात मानती है, बहू को अपने बेटे के आधीन मानती है। उस के मन में यह भी खतरा होता है कि बेटा पूरी तरह से बहू का ना हो जाए। दूसरी तरफ़ बहू भी अपना घर अपनी मर्ज़ी से चलाना चाहती है। उसने बचपन से यही सपने देखे थे कि शादी के बाद वह अपनी मर्ज़ी का खा-पहन सकेगी, अपनी मर्ज़ी से उठ-बैठ सकेगी। इन सब कारणों से सास-बहू में तनाव रहता है। यह तनाव पितृसत्तात्मक ढांचे की ही देन है।

हमारे समाज में पुरुष सूर्य के समान है और स्त्रियां उपग्रहों के समान। सूर्य की अपनी चमक होती है लेकिन उपग्रह अपनी चमक सूर्य से पाते हैं। ठीक इसी प्रकार सास-बहू, ननद सभी पुरुष

से चमक, पद, इज्ज़त पाने की कोशिश करते हैं। बेटा अगर सास के कब्जे में है तो सास की इज्ज़त होगी, उसकी देखरेख होगी, वर्ना नहीं। दूसरी तरफ पति अगर पत्नी के नज़दीक है तो पत्नी की स्थिति बेहतर होगी। एक ही पुरुष पर निर्भर औरतें—चाहे वे सास-बहू हों, सत्ता की लड़ाई में एक दूसरे की दुश्मन बन जाती हैं। अगर स्त्रियों की अपनी चमक हो, अगर उन्हें पद व पेट के लिए पुरुष पर निर्भर न रहना पड़े तो इस प्रकार की रस्साकशी न हो। इसी वजह से हमारा यह मानना है कि स्त्रियां एक दूसरे की दुश्मन पुरुष-प्रधान ढांचे व विचारधारा के कारण बन जाती हैं। यह स्त्रियों की कमज़ोरी, हीनता की भावना का परिणाम है। एक सशक्त, आत्मनिर्भर, खुश औरत शायद ही किसी और औरत से दुश्मनी करे।

इसीलिए हमारी लड़ाई पुरुषों से नहीं है बल्कि पुरुष सत्ता से है व उन सब स्त्रियों और पुरुषों से है जो पुरुष सत्ता को बनाए रखना चाहते हैं। □

जागो बहनो

जागो बहनो डरना छोड़ो औ' हिम्मत से काम करो
मां दुर्गा, लक्ष्मीबाई का नाम न तुम बदनाम करो

इस धरती पे जन्मे सभी यह सभी की माता है
हमारी कोख से जन्मा बेटा, हम पर हाथ उठाता है
खोल के आंखे देख लो इनको, औ' इनकी पहचान करो

पुरुष तो खा पीकर मन की मौज उड़ाते हैं
भूखे प्यासे बच्चे घर में मां को ही तड़पाते हैं
कब तक रोके जीती रहोगी, अपना भी तो ध्यान करो

सोच समझ लो यह तुम दिल में किसने हमें जगाया है
अंधेरे में हम चलती थीं अब किसने यह दीप जलाया है
ठान लो दिल में मर मिटने की अपनी जान कुर्बान करो

रामकु देवी
महिला मण्डल, टिम्बर

महिला जागृति केंद्र

इलाका दक्षिण बिहार, जिला गिरिडीह, गांव गोमिया। यहां हैं कुछ फैक्टरियां, कुछ खदानें और उनमें काम करने वाले आदिवासी मज़दूर। बहुत पिछड़ा हुआ क्षेत्र। फिर औरतों के पिछड़ेपन की क्या सीमा? उनकी हालत जानवरों से भी बदतर।

एक औरत—एक संस्था

संस्था सदा व्यक्ति से ऊपर होती है। लेकिन इस औरत के बारे में कहे बिना बात अधूरी रह जाएगी। सन् 1988 में बिहार के ही सिंहभूम इलाके से एक ईसाई 'नन' यहां आई। बहुत मज़बूत इरादों की ईमानदार औरत। नाम—सिस्टर पिलार। एक आदिवासी औरत के साथ मिलकर काम शुरू किया। संस्था कहलाई—महिला जागृति केंद्र।

काम के मुद्दे

संस्था ने मुद्दे ढूंढे नहीं। वे अपने आप सामने आए। बारह साल की बच्ची के साथ पांच लोगों ने बलात्कार किया। वहां के लिए यह नई बात नहीं थी। लेकिन अब वहां महिला संस्था थी। गांव की औरतों ने मिल कर बातचीत की। थाने में रपट दर्ज कराई। जुलूस निकाले, धरने दिए। आखिर पांचों लड़के पकड़े गए। सात-सात साल की कैद की सज़ा मिली।

पहली बार औरतों को लगा कि वे लाचार नहीं हैं। बस आत्मविश्वास मिला, हिम्मत बढ़ी। मामले आते चले गए। घर में औरत के साथ मारपीट। शराबख़ोरी। औरत व बच्चों को छोड़ कर भगोड़ा हो जाने के मामले, बलात्कार। कोयले की खानों में मजदूरों के साथ होने वाले हादसे। विधवा या अकेली औरतों की ज़मीन हड़पने के लिए उन पर डायन होने का आरोप।

कौन सा अत्याचार था जो यहां औरतों के साथ नहीं हो रहा था। महिला जागृति केंद्र ने औरतों में एक नई चेतना पैदा की है।

विरोध

औरतें अपनी ताक़त पहचानने लगीं। यह मर्दों को कैसे सहन होता। केंद्र के काम का विरोध हुआ। उनके काम को सांप्रदायिकता का रंग देने की कोशिश की। औरतों को ईसाई और ग़ैर-ईसाई के नाम पर लड़वाने को कोशिश की। औरतें इस चक्कर में नहीं आईं। उनकी एकता और मज़बूत हुई। दो साल के अंदर वहां अब जुलूस में दो-चार नहीं, छः सौ औरतें निकलती हैं।

संस्था के अनुभव

पिलार कहती हैं पूरे सरकारी तंत्र का रवैया औरतों के ख़िलाफ़ है। पुलिस, सरकारी अधिकारी, नेता पुरुषवादी सोच से जकड़े हैं। औरत को बराबरी का दर्जा देने को तैयार नहीं। अपने हक़ के लिए हर कदम पर संघर्ष करना पड़ता है।

यह अच्छी बात है कि औरतें बहुत मज़बूत हैं। अब वे अपने मुद्दे सुलझाने को पंचायत बुलाती हैं। संस्था छः महीने के लिए कुछ गांवों को चुन लेती है। वहां स्वास्थ्य, कानून, पितृसत्ता आदि विषयों पर काम करती है। इस तरह से आठ कार्यकर्ताओं की संस्था हज़ारों औरतों के संपर्क में आती है।

रास्ता लंबा है

इतनी कोशिशों के बावजूद औरतों को अभी बहुत लंबा रास्ता तय करना है। यह लिखते हुए हमारा सिर शर्म से झुक जाता है। बीसवीं सदी के अंत में भारत के एक भाग में औरत के साथ इतना अत्याचार होता है। आज भी वहां पंचायत औरत को सज़ा के तौर पर मर्द का पेशाब या पाखाना पिलाने का आदेश देती है।

यह सिर्फ़ बिहार के लिए नहीं पूरे देश के लिए शर्मनाक बात है। हम सबको ऐसे अमानवीय बरताव के खिलाफ़ लड़ना होगा।

आशा की किरण

महिला जागृति केंद्र ने जागृति की लहर पैदा की है। वह एक दिन ज़रूर ज्वार बनेगी। आज सभी गांव वाले केंद्र की ताक़त से वाकिफ़ हैं। यह ताकत है एकता की। अब अत्याचारी क़दम उठाने से थोड़ा डरते हैं। यह सिर्फ एक शुरुआत है। वह भी एक खास इलाके में। आज ज़रूरत है कि गांव-गांव, कस्बे-कस्बे में महिला जागृति केंद्र बनें।

पता—
महिला जागृति केंद्र
पोस्ट आई.ई. गोमिया
ज़िला गिरिडीह-829112
(बिहार) □

आखर कहता अपनी बात
आखर से है कौशल करामात
आखर ने रचा भूगोल इतिहास
आखर वालों का अपना संसार
आखर से करोड़ों का व्यापार
आखर से हो बेड़ा पार

आखर हमें सैर कराते
घर बैठे दुनिया दिखलाते
आखर है अंधे की लाठी
आखर है लूले की काठी
आखर से हैं वेद विज्ञान
बिन आखर हो नहीं ज्ञान

शिशुपाल सिंह
प्रौढ़ शिक्षा, सीकर राजस्थान

एक रपट
सखी-समावेश

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए
मेरे सीने में नहीं, तेरे सीने में सही
हो कहीं भी आग, लेकिन जलनी चाहिए।

अनजाने में ही एक आग जो दिलों के भीतर जल उठी है। एक सखी के शब्दों में "इन पांच दिनों में मेरी कविता का पैटर्न बदल गया।"

कविता का पैटर्न बदल जाना छोटी बात नहीं है। कविता हमारे दिल के विचारों से सीधा संबंध रखती है। अगर इस शिविर में ऐसा कुछ हुआ है तो अवश्य कुछ खास था।

परिचय के बाद चर्चा शुरू हुई।

"लड़कियां अपनी आयु के लड़कों के मुकाबले में शारीरिक दृष्टि से ज़्यादा ताक़तवर होती हैं लेकिन परिवार में बरती जाने वाली असमानता की वजह से कमज़ोर हो जाती हैं।"

"माता-पिता लड़के की अपेक्षा लड़कियों पर ज़्यादा पाबंदियां लगाते हैं। यह एक डर के कारण होती हैं क्योंकि लड़की का शारीरिक शोषण भी किया जा सकता है। हमारा समाज ऐसा है कि यदि किसी के साथ बलात्कार हो जाता है तो उस लड़की को इसकी सज़ा पूरी जिंदगी भुगतनी पड़ती है। इसके लिए दोषी भी लड़की को ठहराया जाता है। इन सब सामाजिक परिस्थितियों को देखते हुए माता-पिता को दोषी मानना अनुचित है।"

हम श्रंगार क्यों करती हैं?

"श्रंगार करने में हम खुद में कुछ ज़्यादा आत्म-विश्वास महसूस करती हैं।"

"श्रंगार कभी-कभी दूसरों को आकर्षित करने के लिए भी किया जाता है।"

एक नाटक जिसमें सभी ने भाग लिया—विषय था "परिवार में मां का आर्थिक योगदान।"

पूरी तरह बहस करने के बाद सभी को यह अहसास हो गया था कि अन्य योगदानों के साथ ही मां (नौकरी न करने वाली) का आर्थिक योगदान भी पिता से कम नहीं होता है।

पहले ही दिन एक महत्वपूर्ण प्राप्ति यह रही कि हमें विश्वास हुआ कि हम भी नाटक बना सकती हैं। नाटक घर पर कड़ी मेहनत करने वाली ऐसी लड़की पर आधारित था जिसे मिलने वाली सुविधाएं नगण्य हैं। दूसरे दिन सुझाव आया कि कथानक को आगे बढ़ाने के लिए लड़की का रिजल्ट प्रथम लाएं। बतौर नाटक सबने इसे मान लिया लेकिन इससे कोई सहमत नहीं हो पाया। माहवारी पर स्लाइड शो देखा गया। संस्कारों की वजह से सबने काफ़ी शर्म महसूस की। शिविर में आयुर्वेद के सरल उपचारों पर चर्चा की गई। फ्यूज़ जोड़ना, प्रेस तथा ट्यूब लाइट ठीक करने की जानकारी दी गई।

प्रतीक्षा ने एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया—"हम यह नाटक क्यों कर रही हैं?

"जब हम अपने पर हो रहे अन्याय का विरोध नहीं कर पा रही हैं तो हमें क्या हक़ है कि हम नाटक में, बहस में दूसरों से चिल्ला-चिल्ला कर कहें कि अन्याय का विरोध करना चाहिए। यदि

मैं ऐसा करती हूं तो क्या दूसरों को और अपने आप को धोखा देना नहीं होगा।''

इससे कुछ उलझाव की स्थिति पैदा हुई। फिर कुछ बातें साफ हुईं।

कांचन—''हम ये क्यों समझें कि हम दूसरों को समझा रही हैं। नाटक स्वयं को समझाने का एक माध्यम हो सकता है।''

स्याम भाई—''वैसे हमें इतनी दूर जाने की ज़रूरत नहीं। हम यह देखें कि क्या हमें नाटक करने में मज़ा आता है? यदि आता है तो इसकी शुरुआत मनोरंजन के तौर पर कर सकते हैं।''

वागीश भाई—''इस प्रश्न का उठना ही विरोध की शुरुआत है।''

रोज़गार संबंधी जानकारी दी गई। प्रश्न उठा

औरतों को नौकरी करने की क्या ज़रूरत है?

सखियों का उत्तर था कि आर्थिक रूप से सक्षम होने पर अपने पैरों पर खड़े होने का आत्मविश्वास होता है। साथ ही किसी पर आश्रित नहीं होने के कारण अपनी बात बिना किसी दबाव में आए कही जा सकती है।

इसके बाद खिलौने और माथापच्ची का सत्र हुआ। मज़ा तो बहुत आया मगर समय की कमी की वजह से अधूरापन रहा।

शिविर की समीक्षा हुई। सभी को लगा कि 5 दिन का समय कम था। आगे ज़्यादा समय होना चाहिए। साथ ही उस तरह के समावेश में मूर्तिकला, क्राफ्ट, खेल आदि को भी प्राथमिकता देने का सुझाव दिया गया।

सखियों के अनुरोध पर गायत्री मंदिर और लघाटे के निवास पर नाटक करने की बात तय हुई। रिहर्सल करने की शुरुआत से पहले ही किसी ने हंसना शुरू किया। पूरे दस मिनट तक हंसी का दौर चलता रहा। बाद में फिर गायत्री मंदिर और लघाटे निवास के पास की बस्ती में नाटक किया गया। लघाटे निवास की बस्ती के लोगों ने नाटक पसंद किया और उससे अपनी सहमति भी दर्शाई।

गायत्री मंदिर के पास एक महिला ने कहा– "मैं खुद अपनी लड़की और लड़के में भेदभाव करती हूं। शायद इसी वजह से मेरा लड़का बड़ा शरारती हो गया है। लेकिन अब मैं अपनी लड़की के साथ अच्छा व्यवहार करूंगी।"

महिला का कथन, शोभा दीदी से नाटक करने का अनुरोध, वागीश भाई द्वारा नाटक की सच्ची प्रशंसा और अनु दीदी का खुश होकर सब पर गुलाल छिड़कना। "अनायास ही स्मृति में इन सब को संजोकर रख लिया है। जानती हूं हमेशा ऐसा नहीं होगा परंतु उससे जो ऊर्जा मिली है और मिलेगी वह अर्थहीन तो नहीं।"

चेतना की दिशा में बढ़ते हुए असंख्य कदमों में एक कदम हमने भी मिलकर विश्वास के साथ बढ़ाया है। आगे... और आगे बढ़ाने के लिए।

प्रतीक्षा तिवारी
एकलव्य—राधागंज, देवास, म.प्र.

□

शिविर की कुछ झलकियां

गंभीर चर्चाएं बहुत हो गईं थीं। उंगलियां बेचैन थीं कुछ करने को। क्यों न बनाएं हम अपने शरीर का मॉडल। अंगों में रंग भरा, काटा, जमाया और बन गया हमारे शरीर का मॉडल। हां, पर किसी मॉडल में गुर्दे आमाशय के ऊपर थे और किसी के नीचे।

सुझाव आया—मूर्ति बनाएं। कुछ सखियां बन गईं कलाकार और कुछ बनी मिट्टी। मिट्टी को कई आकार मिले—काली, सरस्वती, कृष्ण, बुढ़िया, हाथी, दुल्हन और एक आंख मारता लड़का।

फिर पूछे कुछ सवाल... मिट्टी बनकर कैसा लगा? मुझे लगा कि क्या मेरा स्वयं पर कोई अधिकार नहीं जो कलाकार मुझे जैसा ढालना चाहे वैसी ढल जाऊं?

कलाकार—"जो बनाना चाहती थी वह नहीं बना पाई।"

क्या किसी ने भी मिट्टी से पूछा कि वह क्या बनना चाहती है। हां, एक सखी ने उसे बेजान, गूंगी, अशक्त मिट्टी से स्वयं ही अपनी इच्छा अनुरूप ढल जाने को कहा।

मैं इंजीनियर क्यों न बनूं?

स्कूल में पढ़ती थी तब ही तय कर लिया था कि इंजीनियर बनूंगी। रिश्तेदारों ने कहा लड़की को इंजीनियर नहीं बनाना चाहिए। परिवार ने साथ दिया। परन्तु नौकरी? एक विद्युत इंजीनियर को तो मेनटेनेंस विभाग में अटपटे समय काम करना पड़ता है। विभाग में सब पुरुष ही पुरुष। सबको मेरी सुरक्षा की चिंता थी। तब कुछ हल्का काम दिया गया। मेरी रुचि और कौशल का पूरा उपयोग नहीं हुआ।

क्या हम बिजली का काम कर सकती हैं? कई लड़कियां कहती थी, कई बिलकुल नहीं।

दसवीं, बारहवीं के बाद क्या?

लड़कियों का आई.आई.टी. देवस में क्यों नहीं? क्यों लड़कियों को टेकनिकल ट्रेड सीखने का काफी मौका नहीं मिलता? क्यों औद्योगिक प्रशिक्षण केंद्रों में लड़कियों के लिए होस्टल नहीं होते हैं?

हमारे क़ानूनी हक़

माता-पिता की संपत्ति पर हमारा भी उतना ही हक है जितना भाई का। पति की मृत्यु के बाद उसकी संपत्ति में पत्नी का हिस्सा रहता है। यदि पति छोड़ दे तो पत्नी भरण पोषण का पैसा उससे लेने का दावा कर सकती है।

जागोरी समूह ने एक कविता-संग्रह प्रकाशित करना तय किया है। 'सबला' के पाठकों से अनुरोध है व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से महिलाओं द्वारा लिखी कविताएं हमें भेजें। कविता और गीत थोड़े शब्दों में अपनी बात कहने का माध्यम हैं। इसमें हम खासकर नारीवादी सोच की कविताएं शामिल करना चाहते हैं। कुछ ऐसे लोकगीत भी शामिल कर सकते हैं जिसमें महिलाओं की शिकायतें, उनके दुख बयान किए गए हों।

कृपया कविताएं, गीत जल्दी भेजें।

पताः— सुहास कुमार
द्वारा बी-5 हाउसिंग सोसायटी
कोटला मुबारकपुर रोड
साउथ एक्स-I, नई दिल्ली-49

प्रेरकों ने लिखा है।

मेरे आसपास का क्षेत्र आदिम बस्तियों वाला है। इसलिए पत्रिका विशेष संग्रहणीय होने पर भी संग्रह का लोभ संवरण नहीं कर पाया। मैं इसे पढ़ कर दूर इलाके की शिक्षित लड़कियों के पास भिजवाता हूं। अब कुछ-कुछ अनपढ़ महिलाएं भी जुड़ रही हैं। वे अपनी भाषा में अपनी बात पहुंचाना भी चाहती हैं और अपना नाम गुप्त भी रखना चाहती हैं। बहुत सी मजबूरियां हैं। सुधार की अनंत संभावनाएं हैं। अनपढ़ महिलाओं के लिए चित्र, पोस्टर आदि भेजें। जात-पात से परे इस यज्ञ में सभी वर्ग की महिलाएं जुड़ेंगी।

नाथूराम त्यागी

सबला का एक पुराना अंक उदयपुर में हनुमान वन सेवा समिति करगेट (सकरौदा) में पढ़ने में आया। आपके प्रयास से राष्ट्र की ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं के बौद्धिक, मानसिक और आर्थिक विकास को बल ज़रूर मिलेगा। आपका यह प्रयास एक दिन विशाल रूप से नारी को चेतना देने के साथ ही नारी कल्याण एवं सरकारी, गैर-सरकारी एवं कानून के नुमाइंदों को सही मार्ग पर लाकर नए कानून की दिशा में जोड़ने को विवश करेगा। आप का प्रयास अवश्य ही अबला को सबला बनाने में दिनोंदिन प्रगति करेगा।

छींगालाल "बन्दी"
जवाहर शिक्षा निकेतन—बोहेड़ा
ज़िला चित्तौड़गढ़

जे.एस.एन. जैसा स्कूल नहीं
पढ़ने वाले पढ़ो, कहीं किसी पर ज़ोर नहीं
प्रेरक अच्छी बात बताते हैं
साक्षरता का ज्ञान कराते हैं
दीवार-वाटिका पर सुंदर लेख
नित्य नए समाचार सुनाते हैं।

यह संदेश है धर्मवीर सिंह सोलंकी—जन शिक्षण निलियम—खबरा, बुलंदशहर का। साथ ही वे लिखते हैं—सबला पत्रिका "अमूल्य" है। इसकी जितनी कीमत रखें कम है। इससे केन्द्र पर आई महिलाओं को विशेष प्रोत्साहन मिलता है।

धर्मवीर सोलंकी

सबला जैसी पत्रिका हमारे गांव के अनपढ़ महिलाओं और पुरुषों के भविष्य को उज्जवल बनाने वाली पत्रिका है। उसे पढ़कर बहुत ज्ञान प्राप्त हुआ। पत्रिका को मासिक बनाने का प्रयास करें। 'सबला' बंगला भाषा में प्रकाशित करें।

अतनुता
मधुर झंकार पाठागार
सेहारा, बर्धबान (प.ब.)

'सबला' पत्रिका एक पत्रिका न होकर संपूर्ण नारी समाज के लिए ज्ञान की कुंजी है। जो अंधेरे के खिलाफ़ उजाले की लड़ाई है, उसका एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह समाज के कमज़ोर तबकों को आत्मविश्वास तथा स्वतंत्र रूप से जीना सिखाती है। इस पत्रिका में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम चलाया जाना चाहिए अर्थात इस पत्रिका में लिखने-पढ़ने की जानकारी भी दें ताकि औरतों को पढ़ना-लिखना सीखने में मदद मिल सके।

जे.पी. लाठी
मनासा (म.प्र.)

'सबला' केवल मासिक पात्रिका ही नहीं वरन् एक संदेश है। यह संदेश देश के कोने-कोने में पहुंचाना हमारा नैतिक दायित्व है। सबला एक आंदोलन है जिसे सशक्त बनाना है। महान नारियों के चित्र मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित करें। उनके जीवन के प्रेरक अंश प्रकाशित करें।

रामचंद्र राठौर
ग्राम लालखेड़ी,
शाजापुर (म. प्र.)

"समय जगाता है हम सबको
झटपट जग जाना होगा
राष्ट्रीय साक्षरता कार्य में
बनकर प्रेरक करें साक्षर
यह संकल्प हमारा है।"

'सबला' पत्रिका हमें नियमित रूप से मिल रही है। उससे महिलाओं में आत्म-विश्वास जगा है। इससे महिलाओं को ही नहीं पुरुष वर्ग को भी व्यवहारिक दक्षता एवं जागरूकता, महिलाओं के प्रति सद्व्यवहार का संबल मिला है। इसके द्वारा किए जा रहे काम सराहनीय हैं। इस पत्रिका द्वारा बताए पथ पर आगे बढ़ने से एक शोषण-रहित समाज की स्थापना हो सकती है।

बाबूलाल विमल
जनशिक्षण निलियम, उस्फार
ओम प्रकाश सिंह
प्रधान ग्राम सभा उस्फार
मथुरा (उ.प्र.)

हमें और जनता को खुशी है कि आप औरतों से जुड़े अंधविश्वास की बेड़ियों को पत्रिका के माध्यम से नई रोशनी दे रही हैं। वीणा शिवपुरी का लेख "बीमारी की राजनीति" (सबला के अप्रैल-मई अंक में) बहुत रोचक लगा।

साक्षरता में जन चेतना की बहुत ज़रूरत है। उतनी ही जितनी पौधे को खाद की। अंतर्राष्ट्रीय बाल वर्ष, महिला वर्ष, बालिका वर्ष, विकलांग वर्ष की ही तरह साक्षरता वर्ष से हम क्या उम्मीद रख सकते हैं? स्वास्थ्य वर्ष मनाए हुए भी अभी तीन साल हो गए हैं। क्या स्वास्थ्य सुविधाओं में कोई फर्क आया?

यह वर्ष शिक्षा की रोशनी देने का वर्ष है। पिछले 40 सालों से जनता का एक बड़ा भाग अंधेरे से जूझ रहा है। वास्तविक शिक्षा के लिए हमें जनचेतना लाने की बहुत ज़रूरत है। जब तक सभी शिक्षित अशिक्षितों की भलाई में अपनी भलाई नहीं समझेंगे, तब तक जनचेतना कैसे होगी?

धर्मेन्द कुमार
मजुरी, गोरखपुर, (उ.प्र.)

नाटक संकलन की समीक्षा

नुक्कड़-नुक्कड़ आंगन-आंगन

यह हमारी विडंबना (भाग्य) है कि हम खुद को कभी देख नहीं पाते हैं। हमें खुद तक पहुंचने के लिए आइनों का सहारा लेना पड़ता है। आइना हो या तालाब, हमारा अक्स ही हम तक पहुंचता है। औरत को हज़ारों आइनों के जाल में कसा गया है। धर्म, समाज, पुरुष, परंपराएं, रीति-रिवाज...। अपने को टटोलना, एक अंधेरी सुरंग से गुज़रना है। हमारे नाटक इसी प्रक्रिया के हिस्से हैं।

संग्रह में कुल 14 नाटक हैं जिन्हें 3 मोटे भागों में बांटा गया है। 1. परिवार के अंदर, 2. दहेज और 3. औरत और धर्म।

त्रिपुरारी और करुणा कौशिक ने 9 साल से 17 साल की उम्र की लड़कियों के साथ मिल कर महीना भर काम किया। उपजा नाटक "एहसास"। अपने ही मुहल्ले में तैयारी करते हुए उन्हें डर था कि उनकी आवाज़ें ज़्यादा ऊंची न हो जाएं...पर अंत में उन्होंने यह नाटक दिखाया अपने मुहल्ले में।

परिवार के भीतर औरत पर अत्याचार

"घर-घर का सवाल बहना, घर-घर का सवाल
तू भी पिटती, मैं भी पिटती,
दोनों के हैं बुरे हाल।"

ओम स्वाहा

दहेज के लिए होम की जाती लड़कियां, तेरी मेरी कहानी, दहेज का सवाल, दहेज दानव।

राम नाम सत्य है
सत्य बोलो गत्य है
ससुराल वाले मस्त हैं
पड़ोसी सारे व्यस्त हैं
पुलिस वाले सुस्त हैं।
राम नाम सत्य है

औरत और धर्म

नाटक तैयार करने में मदद की सुश्री आयन लाल ने। किसी भी धर्म ने हमें बराबरी का दर्जा नहीं दिया। हमारा दर्जा पुरुष के अधीन है। उनके रीति-रिवाज, मान्यताएं हम पर थोपी जाती हैं। हमें उन्हें ज़ारी भी रखना पड़ता है। क्यों न हम अपनी एक मूलभूत पहचान बनाएं? क्यों पराई पहचान को ओढ़कर अपनी शक्ति बांटती रहें? क्या यह धर्म का खोखला और शोषक रूप नहीं है?

पर्दा प्रथा का बना रहना और सती-प्रथा का बार-बार उभरना—हम कब तक इस भ्रम-जाल में फंसी रहेंगी—नाटक है "इंतजार"।

सवाल है नारी की पहचान का
सवाल है नारी के सम्मान का
धर्मों के क़ानून अनेक
हम मांगें क़ानून एक

"नाटक क्या, ये तो आपने हमारी जिंदगी दिखा डाली।" "बिलकुल सच्ची लगती है यह कहानी"—ये हैं प्रतिक्रियाएं नाटक देखने वालों की।

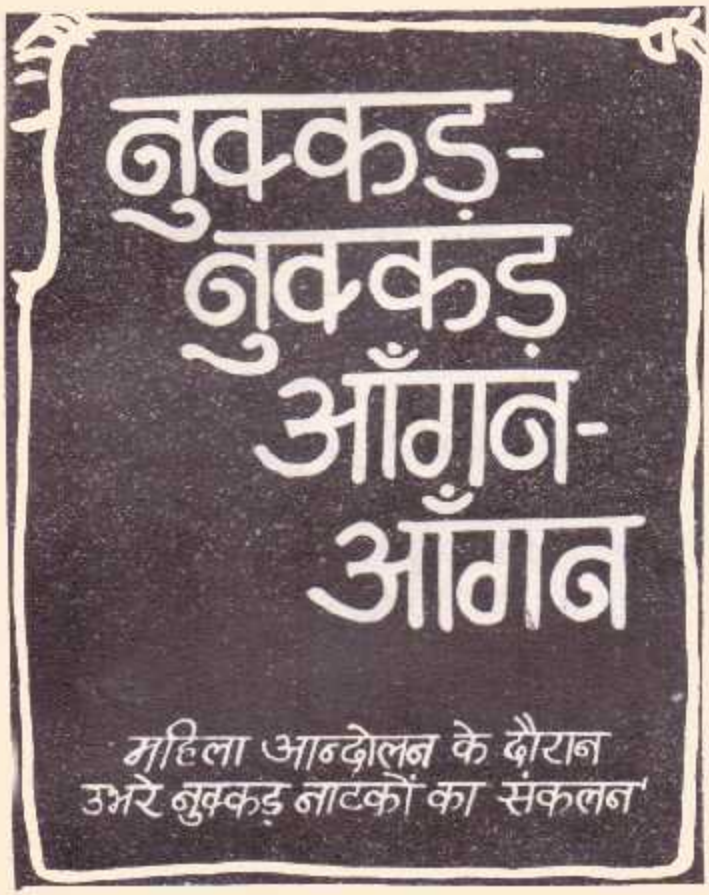

नाटक-संकलन सन् 1988 में जागोरी द्वारा प्रकाशित हुआ। मूल्य 20 रु०। मिलने का पता:

जागोरी, बी. 5, हाउज़िग को. आ. सोसायटी
कोटला रोड, साउथ एक्स. भाग-I, नई दिल्ली

इस संकलन के सभी नाटक एक सामूहिक प्रक्रिया का फल हैं। यह महज़ किताबी नाटक नहीं हैं। नाटक औरतों के बारे में हैं। उनके द्वारा तैयार किए गए हैं।

ये मुद्दों को उठाने और फैलाने में सक्रिय रहे हैं। दरअसल मुद्दे तो सबके एक ही हैं। आपस में संपर्क और जुड़ाव की ज़रूरत है। आप भी हमसे, इनसे, आपस में जुड़ सकती हैं।

इस किताब का इस्तेमाल बहुत से समूहों में किया जा सकता है। संगठनों में समूह-चर्चा के तौर पर नाटक इस्तेमाल किए जा सकते हैं। नारी मुक्ति आंदोलन के इतिहास में इनकी एक जगह है।

अपने-अपने घरों में बंटे हुए, आइए इस चारदीवारी को लांघे।

कौन दिशा ले के चला

आजा री बहनिया तेरी डालेंगे भंवरिया
तू जाएगी अपने पिया के पास ज़रा देखन दे

ठहर-ठहर ओ भैया मेरे काहे करे कमाल हो
12 बरस की मेरी उमरिया कैसे संभालू परिवार हो
बचपन में ही मां बन कर, हो जाऊं बरबाद हो
अभी हमरी है बाली उमरिया
ज़रा पढ़ने तो दे, कछु बढ़ने तो दे ओ भैया...

भइया इक दिन मेरी सखियां करती थी इक बात हो
छोटी उमर में शादी करनी है अपराध हो
फिर क्यों तुम बढ़ाते अपराध
क्यों मानते नहीं बात हो
छोटी उमर में जो करी मेरी शादी
लगे बीसियों बीमारी हो
जरा सोचो तो सही, समझो तो सही

ओ भैया कुछ मेरी मानो तो समझ से लो तुम काम हो
18 बरस के बाद ही भैया
भेजो मुझे ससुराल हो
हम भी सुखी और तुम भी सुखी
जीवन में रहे बहार हो
सोच समझकर कदम उठाएं
छोटा रखें परिवार हो
भैया मानो तो सही

गीता
पक्का बाग, भरतपुर
(धुन गीत—नदिया के पार)

फूलमती की कहानी

अबला से सबला बनी

हेम भटनागर

फूलमती माथ्वाड़ गांव में रहती है। चार साल पहले फूलमती की शादी हुई थी। फूलमती के पति (आदमी) का नाम अमर सिंह है। शादी में फूलमती ने लाल साड़ी पहनी थी। उसकी मां ने चारों तरफ़ गोटा लगाया था। पल्ले पर किरण लगा दी थी।

फूलमती की सहेली थी रमा। रमा शहर में पढ़ने जाती थी। रमा से फूलमती को पता चला था कि शहर में लड़कियां ओंठों पर लाली लगाती हैं। लाली को लिप्सटिक कहते हैं। उससे लिप्सटिक ठीक से बोला भी नहीं जाता था। वह उसे लिपिसटिक कहती थी। रमा ने चुपके से उसके ओंठों पर लगा दी थी। फूलमती का रंग गोरा नहीं था। शादी के पहले सुहागिनों ने तेल चढ़ाया। उसके बाद हल्दी-आटा मिलाकर तेल में घोलकर उसके पैरों और हाथों में लगाया। उससे उसकी खाल खूब मुलायम हो गई और साफ भी हो गई। पैरों में पायल-बिछुए पहना कर महावर लगा दी थी। फूलमती सुंदर लग रही थी।

उसका दूल्हा अमर सिंह भी लाल पगड़ी बांध कर आया था ब्याहने। मौर भी बांध रखा था। शादी के बाद अमर सिंह को फूलमती खूब अच्छी लगी। वह उसे खूब प्यार से रखता। फूलमती के हाथ की रोटी भी उसे मीठी लगती। साल भर बीत गया। फूलमती के बच्चा होने के आसार नहीं दिखाई दिए। अमर सिंह कुछ झुंझलाने लगा। उसे

लगा—कहीं फूलमती को किसी ने बहका तो नहीं दिया, कुछ गोली-वोली दे दी हो। आजकल जहां देखो, यही बात होती रहती है कि बच्चा अभी नहीं। अमर सिंह तो चौबीस साल का हो गया और फूलमती भी बच्ची तो नहीं। सोलह के तो ऊपर ही होगी। अठारह साल की ही होगी।

खेत से लौट कर आता तो अमर सिंह चुप होकर बैठ जाता। चिल्लाकर फूलमती को पुकारता नहीं था। फूलमती चिलम पकड़ा देती तो पी लेता। नहीं देती तो मांगता नहीं। रात होने लगती तो फूलमती दाल-रोटी बनाती। थाली आगे रखती तो खा लेता। यह भी नहीं कहता कि 'फूलमती! तू भी खा, तब खाऊंगा।' फूलमती को बहुत बुरा लगता। वह रोती रहती। कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती।

अमर सिंह ने एक दिन कहा—'देख फूलो! मुझे बच्चा चाहिए। तू अपनी सहेली के साथ डाक्टरनी के पास चली जा।'

डाक्टरनी ने जांच की, तो उसने कहा—'तुम्हारा एक छोटा-सा ऑपरेशन करेंगे, उसके बाद तुम्हारे बच्चा होगा।'

फूलमती ऑपरेशन के नाम से ही डर गई। उसने कहा—'मैं नहीं कराऊंगी।' अमर सिंह ने ज़िद की। कहा—"करा ले, तभी बच्चा होगा। तुझे बच्चा नहीं चाहिए क्या?"

फूलमती सुनकर चुप रही। उसे बड़ा डर लग रहा था। वह सोचती—'अगर मैं डाक्टर के पास गई तो वह काट-पीट कर देगी और मैं मर जाऊंगी।"

अमर सिंह को यह बात बिलकुल अच्छी नहीं लगती थी। फूलमती डाक्टर के पास भी नहीं जाती। उसे फूलमती पर गुस्सा आने लगा। वह रात को घर आता तो कोई न कोई बहाना बनाता और फूलमती को मारता। शराब पीने की तो आदत उसकी थी ही। अब वह और भी देर तक शराब पी कर घर आता। रोज़-रोज़ किसी न किसी बात को लेकर फूलमती से झगड़ा करने लगा।

फूलमती हर समय दुखी रहती। रोती रहती। उसे दुख था कि 'बच्चा न होने की वजह से मेरे आदमी का मन फिर गया। मैं क्या करूं?'

आखिर, उसने अपनी सहेली से कहा—'चल, मैं ऑपरेशन करा लेती हूं।'

अमर सिंह खुशी-खुशी अस्पताल ले गया। कुछ दिनों बाद फूलमती ठीक हो गई, पर छः महीने हो गए, वह गर्भवती नहीं हुई।

उन्हीं दिनों खेत पर जाते-आते अमर सिंह ने शांति को देखा। शांति अमर से बहुत छोटी थी। अमर सिंह छेड़-छाड़ करता और प्यार की बातें करता तो वह हंसती रहती। शुरू में जब अमर सिंह उससे मिलता तो उसके बालों पर हाथ फेरता, फिर गालों पर हाथ फेरता। यह सब उसे अच्छा लगता। उसकी बातों में शांति को रस आता। उसके साथ बैठने-उठने में उसे अच्छा लगता।

एक दिन अमर सिंह शांति को अपने घर ले आया। फूलमती से बोला—'अब यह यहीं रहेगी।'

फूलमती को अच्छा नहीं लगा। उसने कहा—'कैसे रहेगी यहां? यहां तो मैं रहूंगी। मैं तेरी ब्याहता हूं।'

पर अमर सिंह ने कड़क कर कहा—'मैं जो कह रहा हूं—सुन ले। यह यहीं रहेगी। तू इसको अच्छी तरह रख।' और अपने काम पर चला गया।

फूलमती ने शांति से कहा—'तू चली जा यहां से। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।' फूलमती ने लड़ाई कर के शांति को भगा दिया। शांति का बाप तो था नहीं। मां परेशान थी कि अमर सिंह शांति को ब्याह कर ले जाए तभी अच्छा है। ऐसे ही घर बिठाने से गांव वाले तंग करेंगे।

अमर सिंह की एक कठिनाई थी। उसे गांव का मुखिया चुना गया था। अगर मुखिया ही गलत करने लगे तो गांव के लोगों को ठीक राह कैसे दिखाएगा?

इधर शांति को बार-बार घर लाता। फूलमती उसे मारती-पीटती और उसे भगा देती। अमर सिंह भी अपना गुस्सा फूलमती को पीटकर निकाल लेता, पर कोई उपाय नहीं सूझता था।

फूलमती ने गांव के बड़े लोगों से कहना शुरू किया। फूलमती के दुख को सुनकर सभी को अमर सिंह पर गुस्सा आता। अमर सिंह ने घर पर आना ही छोड़ दिया। दस-दस दिन तक वह घर पर नहीं आता। फूलमती ने सुना कि वह शांति

को लेकर कहीं और रहने लगा है।

जब अमर सिंह घर आता तो सारे गांव के लोग घेर कर उसे समझाना शुरू करते, पर उसके कुछ समझ में नहीं आता।

आखिर में एक दिन पंचायत बिठाई गई। पंचायत ने फैसला फूलमती के पक्ष में दिया। अगर अमर सिंह शांति के साथ रहना चाहता है तो वह उससे शादी करके रहे।फूलमती को रहने-खाने के लिए मासिक रुपया दे।

फूलमती ने समझ लिया कि अमर सिंह के साथ रहकर उसे किसी तरह का सुख तो नहीं मिल रहा था। अगर खाने-रहने का रुपया मिल जाए तो उसे कोई शिकायत नहीं।

उसने पंचायत का फैसला मान लिया, पर मन ही मन बहुत दुखी रहती थी। अकेले में बैठी रोती रहती। तभी गांव में एक मेला हुआ। मेले में शहर से कुछ लड़कियां आईं। वह बड़ी-बड़ी किताबें पढ़ी हुई थीं। उन्होंने गांव की सारी औरतों को इकट्ठा कर के पढ़ाना शुरू किया, लिखना सिखाया। फूलमती को बुलाकर समझाया कि जीवन में कुछ गलत हो जाए तो उसके लिए रोते रहने से काम नहीं चलता। अपने आप काम सीखो। पढ़ना लिखना सीख कर अपनी जीविका चलाने की बात सोचो।

फूलमती की समझ में यह बात आ गई और वह थोड़े ही दिनों में किताबें पढ़ने लगी। सिलाई सीखकर गांव की औरतों के ब्लाउज़ और पेटीकोट सीने लगी। सखी-सहेलियों से मिलकर काम करने लगी।

फूलमती का सारा दिन घर के काम में, पढ़ने-पढ़ाने में निकल जाता, पर मन में एक हूक सी उठती कि 'मैं ब्याह करके भी कुंआरी बनी हूं।'

औरतों की कई पत्रिकाएं पढ़-पढ़ कर वह अपने को समझाने लगी थी। एक बार ब्याह करके जब दुख ही मिला तो अब अकेले ही जीवन में सुख ढूंढना चाहिए।

पढ़ने के कारण उसकी दोस्ती पढ़ी-लिखी औरतों से होने लगी। उनकी सलाह से उसने एक सिलाई की दुकान खोल ली। नाम रखा— 'फूलघर'। अपनी दुकान पर एक रजिस्टर रखा। उसमें जो कपड़े सिलवाने आता, उससे कहती 'अपना नाम, पता लिख कर जाओ।' इसी तरह अंगूठा लगाने वालों को भी नाम-पता लिखना सीखना पड़ा।

इस प्रकार फूलमती अपने पर निर्भर रहने लगी। वह एक सबला स्त्री की तरह जीवन बिताने लगी।□

पढ़ाई-लिखाई सीखना सिर्फ 1 और 0 का खेल है। 1 और 0 के हेरफेर से क, ख से ले कर सारे अक्षर सीखे जा सकते हैं। गिनती और हिसाब भी 1 और 0 का ही खेल है।

जो औरतें कच्ची दाल कूट-पीस कर बढ़िया पापड़ बना सकती हैं, तीज-त्योहार पर दीवारों पर सुंदर चित्र बना सकती हैं, क्या वे अक्षर और गिनती नहीं सीख सकतीं।

12वीं कक्षा की एक छात्रा के विचार

नारी जाति मैं तुझसे प्रश्न करती हूं क्यों तू हर अन्याय सहती है? क्यों तू इसके खिलाफ़ आवाज़ बुलंद नहीं करती? तू अपने को अबला कैसे कहलवा लेती है? क्या तू इक्कीसवीं सदी में आगे अबला की ही तरह बढ़ना चाहती है? क्या मर्यादा की आड़ में अपने अस्तित्व को ही मिटा देगी? क्या जयद्रथ, कीचक, राम और रावण के अत्याचार सहती रहेगी। क्या जीना यही है? क्या यही जीवन है?

यदि आज भी नारी साक्षर और जागृत नहीं हुई तो वह हमेशा के लिए अबला ही रह जाएगी। संगठन, मेहनत, लगन से हम क्या नहीं पा सकतीं? पुरुष की तुलना में तेरी शक्ति शायद अधिक है इसलिए पुरुष औरत को दबाकर, पिंजड़े में बंद करके रखना चाहता है।

लक्ष्मीबाई, रमा बाई, रजिया सुल्तान, सावित्री फूले, भीकाजी कामाजी, सरोजनी नायडू और भी अनेक बहादुर स्त्रियों के उदाहरण हमारे सामने हैं। —प्रगति

गांव की बेटी शिक्षित हो

ओ री बहनों गांवों की तुम
शिक्षा पूरी ले लीजो
उन्नति करेगा देश तभी
गांव की बेटी शिक्षित हो
पुलिस चौकी और थानेदारी उनमें नौकर नारी हो
होय कांड लड़की के संग में, ओ री बहनों गांवों की
सीधी रपट कराए से
ओ री बहनों गांवो की।

वार्ड पंच और महिला पंच सरपंच सभी नारी हों
साफ़ रखेंगे गांव गलियारा
मक्खी मच्छर एक न हो
ओ री बहनों गांवों की।

डिसपेंसरी, वाटरवर्क्स में नौकर नारी हो
रोज़मर्रा को ध्यान में रखकर
सब सुविधा हम करें हों
ओ री बहनों गांवों की।

स्वस्थ रहेंगे परिवार सभी
घर-घर में नारी शिक्षित हो
जब हो वह गर्भवती
हम डाक्टरी जांच कराएंगे
दूध दही और कैल्शियम की टिकिया खूब खाए हो
ओ री बहनों गांवों की।

पुष्पा शर्मा
चिकसाना गांव, भरतपुर

हमें शिकायत है

बिहार देश के सबसे पिछड़े राज्यों में है। समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा अशिक्षा को दूर करने का दायित्व हम महिला संगठनों पर आया है।

बालकों के विकास के लिए बाल-विकास परियोजना बिहार में भी चल रही है। इसके लिए आंगनवाड़ी सेविकाएं नियुक्त की जाती हैं। इसमें बहुत ज़्यादा धांधली बरती जा रही है। बहुत से केंद्रों को 8-10 हज़ार रुपया लेकर आरक्षण दिया गया है। केंद्र चलाने वाले इस पैसे की भरपायी कहां से करेंगें? बच्चों के पोषाहार से? फिर बाल विकास क्या होगा?

आंगनवाड़ी की सेविकाओं को इस तरह नियुक्त करने के खिलाफ़ गोविंदपुर प्रखंड की पंचायत समिति और महिला मंडलों ने आवाज उठाई थी। लेकिन उस पर कोई ध्यान न देकर आंगनवाड़ी सेविकाओं का चयन होता जा रहा है। गरीब आवेदिकाएं क्या करें?

बिहार के श्रद्धेय मुख्यमंत्री ने भ्रष्टाचार को दूर करने का प्रण किया है। हम महिला मंडल भी इसी कोशिश में लगे हैं। लेकिन कमीशनखोर और भृष्ट एजेंट इस उद्देश्य को पूरा होने नहीं दे रहे हैं।

इस धांधली को रोकने के लिए पिछले दो महीने से विभिन्न महिला संमठनों की सदस्याओं ने धरना एवं अनशन शुरू किया है। अगर इससे समस्या का समाधान नहीं हुआ तो इसे आमरण अनशन में बदल दिया जाएगा।

भृष्टाचार के विरुद्ध इस आवाज़ में हम समस्त स्वयंसेवी संघ, सामाजिक कार्यकर्त्तागण, समस्त राजनैतिक दलों के कार्यकर्त्ता, प्रबुद्ध नागरिकों से सहयोग की अपेक्षा करते हैं।

संपूर्ण सहयोग के आकांक्षी

गोविंदपुर प्रखंड के विभिन्न महिला मंडल की सब सदस्याएं

(अलीगढ़ केम्प के डा. मोखतारूल हक़ द्वारा प्राप्त)

लड़ाई एक लड़की की— लड़ाई ज़ारी है

नर्मदा घाटी की आवाज बुलंद करते हुए मेधा पाटकर ने यह घोषणा मज़बूती के साथ की है कि "अगर घाटी में एक भी ऐसा आदमी है जो अत्याचार के सामने झुकने के लिए तैयार नहीं है तो हम उसके सहयोगी और मैदानी लोग उसके साथ हैं। चाहे उसका नतीजा बढ़ते हुए पानी में मौत ही क्यों न हो।"

महाराष्ट्र और गुजरात की सीमा पर बसे महाराष्ट्र के आखिरी गांव मणिबेली में जो शायद बरसात के पानी में भी डूब सकता है, मेधा पाटकर घर बसाकर बैठी है। उसने उन सब को ललकारा है जो अहिंसा में विश्वास करते हैं और जनतंत्र को कायम रखना चाहते हैं। क्या इस देश में अब आवाज़ 'तोड़ो-फोड़ो' और गोली के आतंक पर ही सुनी जाएगी।

मेधा के साथ 15 लोगों का एक आत्म-बलिदानी दस्ता भी वहां बैठा है जिसका प्रण है कि वह उठेगा नहीं चाहे पानी उन्हें लील ही जाए। सरकार अहिंसा के रास्ते को क्यों नकार रही है?

नर्मदा आंदोलन से जुड़ी एक महिला को जिसे 7 माह का गर्भ था पुलिस ने काफी पीटा। लेकिन अपने साहस का परिचय देते हुए वह पीछे नहीं हटी।

पढ़ना लिखना सीखें

अनपढ़ न अब हम रहेंगी
सारे अंधियारे दूर करेंगी
अपने मन में है ठानी

तन मन लगा कर हम पढ़ना सीखेंगी
अक्षर तो क्या फिर हम दुनिया पढ़ेंगी
अपनी दुनिया हम आप गढ़ेंगी
अपने मन में है ठानी

तन मन लगा कर हम लिखना सीखेंगी
अब क़िस्मत हमारी हम खुद ही लिखेंगी
रोने क़िस्मत के अब ना रोयेंगी
अपने मन में है ठानी

तन मन लगा कर हम गणित करेंगी
अच्छे बुरे का हिसाब अब रखेंगी
हेराफेरी न अब हम सहेंगी
अपने मन में है ठानी

इल्मो शऊर को अपना बना के
इक नई दुनिया का सपना सजा के
सब मिल आगे बढ़ती रहेंगी
अपने मन में है ठानी

जो फ़र्ज़ बताए हक़ूक दिलाए
जुल्मो सितम से जो लड़ना सिखाए
ऐसे इलम को साथी चुनेंगी
अपने मन में है ठानी

शब्द : कमला भसीन
चित्र : तापोसी घोषाल

कब तक बांधे रखोगे हमको
फ़र्ज़-प्यार की तक़रीर से
कभी न कभी जाएंगे उस पार
तुम्हारी बनाई दहलीज़ से